सरदार वल्लभ भाई पटेल

सेठ गोविंददास

सरदार पटेल

लौहपुरुष सरदार वल्लभ भाई पटेल की जीवनी

सेठ गोविन्ददास

निवेदन

महात्मा गांधी के बाद की वह पीढ़ी, जिसने देश की स्वाधीनता
काम किया और उसके बाद उसकी सुरक्षा तथा निर्माण के लिए
समाप्त हो रही है। इसमें से देश के वे सर्वाधिक उज्ज्वल रत्न सरदार
भाई पटेल, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, और पं० जवाहरलाल नेहरू
हैं। तीनों ही महानुभावों ने स्वाधीनता के लिए और उसे वा
अर्थों में सुदृढ बनाने के लिए भी जो प्रयत्न, परिश्रम और पुरुषा
है, उसका सौभाग्य क्वचित् ही लोगों को मिला है—आधुनिक
का नक्शा और उसका जो चित्र है, उसमें जो भी शुभ और सौम
मुख्यतः वह इन तीनों ही महानुभावों के कृतित्व का परिणाम है
परिश्रम का पुण्य है।

प्रकाशक बन्धु श्री विश्वनाथजी ने जवाहरलालजी के देहाव
बाद मुझसे उनकी एक संक्षिप्त जीवनी चाही। वह मैंने लिखक
दी। इसके बाद डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी की जीवनी भी मैंने लिख
वह भी उन्होंने प्रकाशित की। ये दोनों ही पुस्तकें बड़ी लोकप्रि
और यह अनुभव किया गया कि स्वाधीनता और उसके स्वप्नों को
रूप देनेवाले इन दो महानुभावों के जीवन-वृत्त के साथ सरदार प
भी एक संक्षिप्त जीवन-वृत्त प्रकाशित किए बिना इस काल का वह
जो एक-दूसरे के अनिवार्य योग से जुड़ा हुआ है, अधूरा ही रहेगा
प्रस्तुत पुस्तक इसी भावना के एक अल्प प्रयत्न के रूप में तैयार
जिसे पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में मुझे प्रसन्नता हो रही है

सरदार पटेल का बहुमुखी और विशाल व्यक्तित्व, तथा
व्यापक योगदान इस छोटी-सी पुस्तक में समाविष्ट करना कठिन।

क्रम

सरदार पटेल

□

जन्म, बाल्यकाल और शिक्षा

भारतीय संस्कृति में आनुवंशिकता का सदा महत्त्व रहा है। इस देश की परम्पराओं में, जो हमारी संस्कृति का प्रवाह बनकर हमारे राष्ट्रीय जीवन में समाई हुई हैं, इतिहास-काल से ही ऐसे अगणित प्रतिभाशाली और प्रतिष्ठित कुल, वंश और परिवार हमारी उच्चता और पवित्रता के प्रमाण रहे हैं जिनसे न केवल उस काल में, वरन आज भी हमें प्रेरणा, प्रोत्साहन और प्रकाश मिलता है। प्राचीन काल से ही भारत विचार और आचार की कुलीनता का अनुभवी रहा है और इसीलिए उनके जन-जीवन में सदा ही कुलीनता का सर्वोपरि स्थान है। भारत की यह कुलीनता व्यक्ति के वंश, उसके जन्म, विचार और कार्यों, सभीमें समानार्थी है, और इस प्रकार जन्म से मृत्यु तक शिक्षा और संस्कार में तथा विचार और आचार में कुलीनता का यह ताना-बाना भारतीय जीवन की एक पवित्रतम कसौटी बनकर यहां के जन-जीवन में समा गया है। हमारे अतीत की यही कुलीनता आज हमारी राष्ट्रीयता में परिवर्तित, प्रतिबिम्बित और प्रतिफलित हुई है। अन्तर केवल इतना हो गया है कि पहले व्यक्ति की कुलीनता का मापदण्ड उसका वंश बनता था और आज उसकी कुलीनता का मापदण्ड उसका राष्ट्र हो गया है। सूत्र वही है, विचार भी वही है, वंश अथवा कुल विकास पाकर राष्ट्र बन गया है।

एक साधारण-सी कहावत है :

जैसे जे के छोरे नारे
तैसे ते के भरका।
जैसे जे के बाप मतारी
तैसे ते के लरका ॥

क्रम

सरदार पटेल

□

जन्म, बाल्यकाल और शिक्षा

भारतीय संस्कृति में आनुवंशिकता का सदा महत्त्व रहा है। इस देश की परम्पराओं में, जो हमारी संस्कृति का प्रवाह बनकर हमारे राष्ट्रीय जीवन में समाई हुई हैं, इतिहास-काल से ही ऐसे अगणित प्रतिभाशाली और प्रतिष्ठित कुल, वंश और परिवार हमारी उच्चता और पवित्रता के प्रमाण रहे हैं जिनसे न केवल उस काल में, वरन आज भी हमें प्रेरणा, प्रोत्साहन और प्रकाश मिलता है। प्राचीन काल से ही भारत विचार और आचार की कुलीनता का अनुभवी रहा है और इसीलिए उनके जन-जीवन में सदा ही कुलीनता का सर्वोपरि स्थान है। भारत की यह कुलीनता व्यक्ति के वंश, उसके जन्म, विचार और कार्यों, सभीमें समानार्थी है, और इस प्रकार जन्म से मृत्यु तक शिक्षा और संस्कार में तथा विचार और आचार में कुलीनता का यह ताना-बाना भारतीय जीवन की एक पवित्रतम कसौटी बनकर यहां के जन-जीवन में समा गया है। हमारे अतीत की यही कुलीनता आज हमारी राष्ट्रीयता में परिवर्तित, प्रतिबिम्बित और प्रतिफलित हुई है। अन्तर केवल इतना हो गया है कि पहले व्यक्ति की कुलीनता का मापदण्ड उसका वंश बनता था और आज उसकी कुलीनता का मापदण्ड उसका राष्ट्र हो गया है। सूत्र वही है, विचार भी वही है, वंश अथवा कुल विकास पाकर राष्ट्र बन गया है।

एक साधारण-सी कहावत है :

जैसे जे के झोरे नारे
तैसे ते के भरका।
जैसे जे के बाप मतारी
तैसे ते के लरका॥

गुजरात प्रदेश की कुरमी नामक प्रसिद्ध क्षत्रिय जाति में मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्र के पुत्र लव के नाम पर लेवा और कुश के नाम पर कदवा नामक दो उप-जातियों में से लेवा जाति में 31 अक्टूबर, 1875 को बोरसद तालुके के करमसद नामक गांव के एक कृषक परिवार में श्री झवेर भाई को पुत्र-लाभ हुआ। बालक का नाम वल्लभ भाई रखा गया। बालक वल्लभ भाई का जन्म अपनी ननसाल नडियाद में अपने नाना जीजी भाई वस्ता भाई देसाई और मामा डूंगर भाई के घर ही हुआ। वल्लभ भाई के पिता झवेर भाई बड़े साहसी, संयमी और वीर पुरुष थे। स्वतन्त्रता के प्रथम प्रयास सन् 1857 में उन्होंने अपनी तरुणाई को मातृभूमि की सेवा में अर्पित कर दिया था। घरवालों को बिना बताए तीन वर्ष तक लापता रहे। उन्होंने झांसी की महारानी लक्ष्मीबाई तथा नाना साहिब धोंडोपन्त की सेनाओं में भाग लेते हुए समस्त उत्तरी भारत का भ्रमण किया। यही नहीं, महारानी की फौज में भर्ती होकर अंग्रेजों के साथ युद्ध भी किया। इसी बीच झवेर भाई को मल्हार राव होल्कर ने इन्दौर में कैद कर लिया। मल्हार राव होल्कर शतरंज के प्रेमी थे और झवेर भाई स्वयं एक अच्छे खिलाड़ी। होल्कर ने झवेर भाई को इस बात की अनुमति दे दी कि वे हाथ-पैर बन्धवाकर उनका शतरंज का खेल देखते रहें। खेल के दौरान श्री झवेर भाई ने मल्हार राव होल्कर को कुछ ऐसी चाल सुझाई कि शतरंज की उनकी इस योग्यता और काबिलीयत पर महाराजा मुग्ध हो गए और उन्होंने उन्हें बन्दी-जीवन से तत्क्षण मुक्त कर इन्दौर में ही रहने का निमन्त्रण दिया। किन्तु झवेर भाई वहां न रहकर महाराजा से विदा हो अपना कृषि-कार्य करने गांव चले आए।

झवेर भाई का पहला विवाह सुणाव गांव में हुआ था, किन्तु पहली पत्नी के निःसन्तान गुजर जाने के कारण उनका दूसरा विवाह लाड़बाई के साथ हुआ। लाड़बाई से झवेर भाई के पांच पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई। इनमें सबसे बड़े सोमा भाई थे। इनसे छोटे नरसिंह भाई, विट्ठल भाई, वल्लभ भाई और काशी भाई थे। पुत्री डाहीबा सबसे छोटी थीं।

श्री वल्लभ भाई का बाल्यकाल माता-पिता के साथ अपने गांव

करमसद में ही बीता। उन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा भी वहीं समाप्त की। उनके पिता नित्य प्रातःकाल उन्हें अपने साथ खेत पर ले जाते और मार्ग में आते-जाते पहाड़ा याद कराते थे। माध्यमिक शिक्षा के लिए उन्हें नड़ियाद और बड़ौदा जाना पड़ा। 'पूत-लक्षण पालने में ही दिख जाते हैं'—उक्ति के अनुसार बालक वल्लभ भाई का विद्यार्थी-जीवन बड़ा ही उज्ज्वल और दबंग रहा है। उनके भविष्यत् जीवन के शुभ लक्षण उनके विद्यार्थी-जीवन में ही परिलक्षित होने लगे थे। जब वे नड़ियाद में पढ़ते थे, उन्होंने स्कूल में एक आन्दोलन शुरू किया। उनके स्कूल के शिक्षक स्कूल में ही पुस्तकों का व्यापार करते थे और वे विद्यार्थियों पर इस बात का दबाव डालते थे कि पुस्तकें बाहर से न खरीदकर उन्हींसे खरीदी जाएं। वल्लभ भाई ने इसका विरोध किया और इस बात का आन्दोलन छेड़ दिया कि कोई भी विद्यार्थी उनसे पुस्तकें न खरीदे। इससे सारे स्कूल का वातावरण बड़ा उत्तेजनापूर्ण हो गया और पांच-छः दिनों तक स्कूल बन्द रहा। अंत में उक्त शिक्षक महोदय को झुकना पड़ा और वल्लभ भाई ने भी अपना आन्दोलन वापस ले लिया।

इसके बाद मैट्रिक के पाठ्यक्रम को पूरा करने के लिए जब वल्लभ भाई बड़ौदा पहुंचे तो उन्होंने गुजराती ली। छोटेलाल नामक एक शिक्षक थे जो यद्यपि गुजराती पढ़ाते थे, पर संस्कृत के बड़े भक्त थे और वे संस्कृत न लेनेवाले विद्यार्थियों को नापसन्द करते थे। वल्लभ भाई के संस्कृत न लेने पर भी वे मन ही मन नाराज थे। जब वल्लभ भाई अपनी कक्षा में पहुंचे तो उन्होंने व्यंग्यपूर्ण स्वर में कहा : "आइए महा-पुरुष! कहां से पधारे?" इसपर वल्लभ भाई ने विनम्रता से उत्तर दिया : "नड़ियाद से।"

शिक्षक ने पुन. प्रश्न किया : "संस्कृत छोड़कर गुजराती ले रहे हो। क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि संस्कृत के बिना गुजराती शोभा नहीं देती?"

वल्लभ भाई ने तत्काल जवाब दिया : "गुरुजी! यदि हम सभी संस्कृत पढ़ते तो आप किसे पढ़ाते?"

वल्लभ भाई की इस हाज़िर-जवाबी से मास्टर छोटेलाल मन ही मन क्रुद्ध गए और इस प्रकार शिक्षक और विद्यार्थी दोनों में मनोमालिन्य

हो गया जो आगे बढ़ता गया। उसी समय मास्टरजी ने वल्लभ भाई को दिनभर क्लास की पिछली बेंच पर खड़े रहने की आज्ञा दी और प्रतिदिन घर से पहाड़े लिखकर लाने की भी। एक दिन वल्लभ भाई पहाड़े लिखकर नहीं लाए। मास्टर द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर उन्होंने उत्तर दिया: "पाड़े भाग गए।" पाड़े भैंस के बच्चे को भी कहते हैं। अब शिक्षक छोटेलालजी और चिढ़ गए और उन्होंने बालक वल्लभ भाई की इस अशिष्टता की शिकायत हेडमास्टर से की। इसपर हेडमास्टर द्वारा कैफियत मांगे जाने पर वल्लभ भाई ने बड़ी शिष्टता, पर निर्भीकता से उत्तर दिया: "यह मास्टरजी मुझसे व्यर्थ ही पहाड़े लिखवाते हैं। यदि पढ़ने की पुस्तकों में से कुछ लिखवाएं तो कुछ लाभ भी हो। इन पहाड़ों से मुझे क्या लाभ?" बात हेडमास्टर की समझ में आ गई और उन्होंने बालक वल्लभ को बिना कुछ कहे-सुने ही छोड़ दिया। इसके दो माह बाद ही वल्लभ भाई का एक दूसरे शिक्षक से झगड़ा हो गया और इस बार आप स्कूल से निकाल दिए गए। इसके बाद आप नडियाद आए और यहीं से सन् 1897 में लगभग 22 वर्ष की आयु में मैट्रिक परीक्षा पास की। इस प्रकार वल्लभ भाई की स्पष्टवादिता, तेजमिजाजी, विचारों की निर्भीकता और जिसे ठीक समझना उसपर साहस एवं दृढ़तापूर्वक डटे रहने की प्रवृत्ति का कुछ परिचय उक्त प्रसंगों से उनके विद्यार्थी-जीवन में मिलने लगा था। किन्तु उस वक्त यह कौन कह सकता था कि यह भारत के बदलनेवाले इतिहास का पूर्वाभास है।

मैट्रिक पास करते-करते वल्लभ भाई का मन महत्त्वाकांक्षाओं से भर उठा था। अपने अब तक के विद्यार्थी-जीवन में उन्होंने जो दुनिया देखी थी उसका क्षेत्र बहुत ही सीमित था। उनके मन में उच्चशिक्षा प्राप्त करने की बड़ी महत्त्वाकांक्षा थी, किन्तु उनके परिवार की आर्थिक स्थिति अत्यन्त साधारण होने के कारण उच्चशिक्षा के लिए उन्होंने कोई अवलम्ब न देख स्वावलम्बी बनाने का निश्चय किया। मैट्रिक पास करने के बाद अब क्या किया जाए, यह प्रश्न उनके और उनके परिवार के सामने आया। वल्लभ भाई के मामा डूंगर भाई ने, जो एल० सी० ई० पास होने के

कारण अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी में मुख्य इंजीनियर थे और म्युनिसिपैलिटी एवं नगर में जिनकी अच्छी प्रतिष्ठा थी, कहा कि वल्लभ अहमदाबाद आ जाए तो म्युनिसिपैलिटी में मुकद्दम की जगह दिलवा दूंगा। किन्तु वल्लभ भाई जैसे स्वतन्त्र प्रवृति के मेधावी एवं महत्त्वाकांक्षी नवयुवक को इस तरह की नौकरी से कैसे सन्तोष हो सकता था। बचपन से ही जैसी उनकी प्रकृति थी, और उसमें भी उनके जो विचार, मान्यताएं, स्वप्न एव महत्त्वाकाक्षओ का एक चित्र उनके अन्त.करण में निर्मित हो रहा था, उसमे किसी छोटी-मोटी नौकरी अथवा आजीविका-साधन से ही वल्लभ भाई का सन्तुष्ट हो जाना विधि के विधान की भाति सम्भव था ही नही । उनकी इस चित्तदशा का परिचय सन् 1921 के असहयोग काल मे मौड़ासा मे दिए उन्हीके एक मर्मस्पर्शी भाषण से मिलता है जिसका कुछ अश यहा उद्धृत किया जा रहा है :

"···भाई मोहनलाल ने मेरा परिचय देते हुए कहा कि मैं पहले अंग्रेजो की हूबहू नकल करता था, यह सच है। साथ ही यह बात भी सही है कि मै फुरसत का समय खेल-कूद मे विताता था। उस समय मेरा विश्वास यह था कि इस अभागे देश मे विदेशियों की नकल करना ही उत्तम कार्य है। मुझे शिक्षा भी ऐसी ही दी गई थी कि इस देश के लोग हलके और नालायक है, और हमपर राज्य करनेवाले परदेशी ही अच्छे और हमारा उद्धार करने मे समर्थ है; इस देश के लोग तो गुलामी के ही योग्य हैं; ऐसा जहर इस देश के तमाम बच्चों को पिलाया जाता है। मैं बचपन से ही यह देखने और जानने को तड़पता रहता था कि जो लोग सात हजार मील दूर विदेश से राज्य करने आते थे उनका देश कैसा होगा। मैं साधारण घराने का था। मेरे पिताजी मन्दिर मे जिन्दगी बिताते थे और उसीमें उन्होने वह पूरी की। मेरी इच्छा पूरी करने का उनके पास साधन नही था। मुझे मालूम हुआ कि दस-पन्द्रह हजार रुपया मिल जाए तो विलायत जा सकता हू। मुझे कोई इतना देनेवाला नही था। मेरे एक मित्र ने कहा कि ईडर स्टेट में दरबार से रुपया ब्याज पर मिल सकता है। उस मित्र के काका ईडर में ही रहते थे, इसलिए मेरा वह मित्र और मैं दोनो ईडर गए और शेखचिल्ली जैसे

विचार करके गांव की प्रदक्षिणा करके वापस चले आए। अन्त में निश्चय हुआ कि विलायत जाना हो तो रुपया कमाकर जाना चाहिए। वाद में वकालत की पढ़ाई की और वकालत का धन्धा करके खर्च लायक कमाई करके विलायत जाने का निश्चय किया।"

देश के हिन्दू समाज में उस वक्त वाल-विवाह एक आम रिवाज़ था। निर्धनों और अशिक्षितों में ही नहीं, सम्पन्न और सुसंस्कृत परिवारों में भी यह एक मान्य प्रथा का रूप ले चुका था। फिर भला वल्लभ भाई भी इसके अपवाद कैसे हो सकते थे। उनका भी अठारह वर्ष की उम्र में; जो यद्यपि उस काल के हिसाव से कुछ अधिक उम्र ही मानी जाएगी, निकट के ही गाना नामक ग्राम में झवेर वा के साथ विवाह सम्पन्न हो गया। उस वक्त झवेर वा की आयु लगभग वारह-तेरह साल की थी। उस वक्त जिस प्रकार अल्पायु में विवाह का रिवाज़ था, उसी प्रकार विवाह के पांच-सात वर्ष वाद गौना, जिसमें विवाह के वाद वधू का पुनरागमन होता है, का भी आम रिवाज था। गौने के वाद ही नव दंपती का पारिवारिक जीवन आरम्भ होता था। अतः वल्लभ भाई का भी विवाह के काफी समय वाद लगभग वकील वन जाने पर गृहस्थ जीवन आरम्भ हुआ।

वकालत

जैसा कि ऊपर कहा गया है वल्लभ भाई ने सन् 1900 में मुखतारी की परीक्षा पास की और गोधरा में वकालत करने लगे। यद्यपि वल्लभ भाई को नडियाद में वड़े-वड़े वकीलों ने अपने साथ रहकर वकालत करने को निमन्त्रित किया, किन्तु उन्होंने अपनी स्वतन्त्र मिजाजी के कारण गोधरा का छोटा-सा क्षेत्र ही चुना। गोधरा का चुनाव करने का एक प्रधान कारण कदाचित् यह भी था कि वल्लभ भाई के अग्रज विट्ठल भाई 1895 में वकील वनने के वाद गोधरा में ही वकालत करते थे और थोड़े ही समय पहले वोरसद गए थे, इसलिए, स्वाभाविक ही उनकी जान-पहचान और प्रभाव का लाभ मिल जाए। विट्ठल भाई ने भी अपने साथ वोरसद रहने का आग्रह किया था, किन्तु वल्लभ भाई ने अपने

स्वतन्त्र विकास की दृष्टि से गोधरा में ही वकालत स्वतन्त्र रूप से करना उचित समझा। वल्लभ भाई जब गोधरा गए, तब उनके पास अपनी विद्या और योग्यता के सिवा कोई भौतिक साधन नहीं था। यहां तक कि घर बसाने के लिए आवश्यक बर्तन-भांड़े आदि तक नहीं। परिणामतः वल्लभ भाई ने बर्तन-भांड़े और फरनीचर आदि का प्रबन्ध नडियाद के गुदड़ी बाजार से, जिसमे कि सस्ता मिले, खरीदकर किया और वह भी कर्ज उठाकर। इस प्रकार बड़ी आर्थिक कसमसाहट में अपनी आजीविका और परिवार का प्रारम्भिक जीवन आरम्भ किया।

वल्लभ भाई के गोधरा निवास-काल के प्रारम्भिक दिनो का एक संस्मरण बहुत प्रसिद्ध है, जिससे उनकी सेवा-वृत्ति निस्पृहता और निडरता का परिचय मिलता है, उसका उल्लेख यहा उपयुक्त होगा।

गोधरा में भयानक प्लेग फैला। उसमे अदालत के नाजिर, जो वल्लभ भाई के मित्र और हितैषी थे, का लडका बीमार पड़ गया। वल्लभ भाई उसकी सेवा-सुश्रूषा मे जुट गए। लड़के का देहान्त हो गया मृतक को श्मशान मे रखकर घर लौटते ही वल्लभ भाई स्वयं प्लेग मे फंस गए। उन्हें एक बड़ी गांठ निकल आई। सरदार घबराए बिना पत्नी के साथ गाडी मे बैठ आनन्द से बोले "तुम करमसद जाओ, मैं नडियाद जाता हूं। वहां अच्छा हो जाऊंगा।" प्लेग मे पड़े पति को छोड़कर जाने की हिम्मत किस पत्नी को होगी? यही नहीं, कौन पति इस स्थिति मे पत्नी को चले जाने का आग्रह करेगा? किन्तु साहस और समझदारीपूर्ण दोनों ही बातें वल्लभ भाई ने की। झवेर बा करमसद चली गईं और वे नडियाद पहुंचकर वहा रहकर अच्छे हो गए।

गोधरा निवास-काल में वल्लभ भाई ने अपनी कार्यपटुता, व्यवहार कुशलता और बुद्धि-चातुर्य के कारण पर्याप्त ख्याति अर्जित कर ली थी। उनके पास फौजदारी के मुकदमे अधिक आते थे। और अपने विषय में दक्षता रखने एवं तर्कपूर्ण तीक्ष्ण बुद्धि के कारण उनका फौजदारी के अधिकारियो तथा पुलिस आदि अन्य अफसरो पर बड़ा रोब था। प्राय अन्य वकील लोग जबकि अफसरो और अधिकारियो की चाटुकारिता एव जी-हजूरी से अपनी आजीविका, प्रभाव और प्रतिष्ठा को आगे बढाने

सफल होते थे, इसके विपरीत वल्लभ भाई अपनी योग्यता, कार्य एवं
माणपटुता से अपनी खास-धाक जमाने में वड़े सफल सिद्ध हुए। और
ही वजह हुई कि औरों की तरह परावलम्वन अथवा परमुखापेक्षिता की
अपेक्षा स्वतन्त्र और वेपरवाह स्वावलम्वी वृत्ति से सदा उन्होंने
अपना काम करने की आदत वना ली। गोधरा के अपने कार्यकाल में
उन्होंने अपनी इस स्वतन्त्रमिज़ाजी का परिचय भी दिया। वे कलेक्टरों
और मजिस्ट्रेटों की कभी कोई परवाह नहीं करते थे। इतना ही नहीं,
उन्होंने कत्ल के मामले में श्री हस्वण्ड नामक एक अंग्रेज़ तक को खूब
छकाया था।

गोधरा में दो वर्ष व्यतीत कर सन् 1902 में वल्लभ भाई वोरसद
आ गए। श्री विट्ठल भाई पटेल पहले से ही यहां मौजूद थे। वल्लभ भाई
के इतने शीघ्र वोरसद आने का एक प्रधान कारण हुआ। वोरसद के
स्थानीय आफीसरों के साथ विट्ठल भाई का ज़बरदस्त झगड़ा चल रहा
था। वोरसद के प्रमुख अधिकारियों में रेजीडेण्ट फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट,
तहसीलदार तथा फर्स्ट क्लास सव-जज थे। ये लोग विट्ठल भाई के साथ
दुश्मनी रखते थे। दुश्मनी का कारण, पहले के सब-जज पर रिश्वत
लेने के मामले में जांच कराने के लिए विट्ठल भाई ने कमीशन नियुक्त
करवाया था, यह वताया जाता है। इसलिए लोग विट्ठल भाई के विरुद्ध
वदला लेने के लिए किसी न किसी प्रकार का कोई मामला खड़ा करने
की ताक में थे। वल्लभ भाई को इस वात का पता था, अतः उन्होंने
यही उचित और आवश्यक समझा कि अपना मुकाम अब वोरसद ही
वना लिया जाए जिससे वक्त-ज़रूरत वे भाई की सहायता कर सकें।

वोरसद में वल्लभ भाई पृथक मकान लेकर रहने लगे। वे विट्ठल भाई
से अपना सारा व्यवहार-सम्वन्ध ऐसा रखते थे कि सभी अफसर यह मानने
लगे कि दोनों भाइयों में अनवन है। किसी-किसी मुकदमे में जव दोनों
एक-दूसरे के विरुद्ध खड़े होते, तो यह वात और पुष्ट हो जाती और ऐसे
लोगों को, जो दोनों भाइयों के नेक सम्वन्ध पसंद नहीं करते थे, मुकदमों में
प्रतिद्वन्द्वी के रूप में खड़ा देखकर वड़ा मज़ा भी आता था। इसी बीच एक
घटना घट गई। वल्लभ भाई के एक मुकदमे में एक तहसीलदार आ फंसा।

रेजीडेण्ट मजिस्ट्रेट उसका मित्र होने के कारण उसे बचाना चाहता था। अत: विवशतापूर्वक अफसरों को वल्लभ भाई की शरण में जाना पड़ा। मगर वल्लभ भाई ऐसे कब छोड़नेवाले थे, वे माने नहीं। लाचार अब विट्ठल भाई ने सिफारिश की तो उनके विरुद्ध जो अफसर लोग षड्यन्त्र कर रहे थे, उन सबके सामने प्रगट करके विट्ठल भाई का विरोध छोड़ देने को राजी कर, विट्ठल भाई और अफसरों दोनों के बीच का वैमनस्य मिटा वल्लभ भाई ने दोनों फिरकों में दोस्ती करवाई। और इस प्रकार तहसीलदार को संकट से मुक्त किया।

अब वल्लभ भाई को दो सन्तान भी प्राप्त हो चुकी थीं। अप्रैल सन् 1903 में पुत्री मणिबेन का तथा नवम्बर, 1905 में पुत्र डाह्या भाई का जन्म हुआ था। दोनों अपनी ननसाल में पैदा हुए थे।

बोरसद में भी वल्लभ भाई की वकालत खूब जम गई। बम्बई इलाके-भर में उस वक्त खेड़ा जिला फौजदारी अपराधों का गढ़ माना जाता था और जिले में भी सबसे अधिक बोरसद तालुका। इसलिए सरकार ने इस तालुके में एक खास रेजीडेंट फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट की नियुक्ति की, जिसे पहले दर्जे के मुकदमे सुनने के सिवाय और कोई काम नहीं था। इस अदालत में महत्त्वपूर्ण मामले चलाने के लिए सरकार की ओर से अहमदाबाद के सरकारी वकील को रखा जाता था। बचाव पक्ष के मामले में लोग वल्लभ भाई को ही अपना वकील करते थे। वल्लभ भाई के परिश्रम, योग्यता, अद्भुत चातुरीपूर्ण जिरह तथा शहादत की छानबीन करने की जबरदस्त शक्ति और काबिलीयत आदि गुणों के कारण जब वल्लभ भाई हाथ में लिए हुए मुकदमा में प्रतप्रतिशत सफल होने लगे तो सरकारी वकील व पुलिस अधिकारी घबराए। अभियुक्तों के लगातार निर्दोष करार दिए जाने पर सरकार ने भी जवाब तलब किया। तब इन लोगों ने अपनी कैफियत में कि जब तक यहां वल्लभ भाई वकील हैं, तब तक अभियुक्तों के छूट जाने की पूरी सम्भावना है। इसलिए यह अदालत यहां से हटाकर आणन्द ले जानी चाहिए। आणन्द जिला केन्द्रस्थान होने के कारण सारे जिले के मुकदमे वहां चलाने में गवाहों को भी आने-जाने में अनुकूलता रहेगी। परिणामत: अदालत आणन्द में हटा दी गई। अदालत

के स्थानान्तरित होने पर वल्लभ भाई ने भी अपना बोरिया-बिस्तर बोरसद से समेट आणन्द में डेरा डाल दिया। परिणाम फिर वही हुआ, वल्लभ भाई की काबिलीयत और बेपनाह परिश्रमवृत्ति से यहां भी अधिकांश मामलों में रिहाइयां होने लगीं। आखिर एक वर्ष बाद ही अदालत फिर बोरसद ले आई गई।

ऊपर कहा जा चुका है कि वल्लभ भाई अधिकांशतः फौजदारी मुकदमे ही लेते थे। इसका कारण भी था। एक बार उनसे पूछे जाने पर उन्होंने स्वयं कहा था: "मैं ऐसे ही मुकदमे लेता था, जिनमें थोड़े समय में अधिक कमाया जा सके। दीवानी मामले बहुत कम लेता था और उनमें भी जहां कानून के गली-कूचों में जाना पड़े वैसा नहीं लेता था। परन्तु, ऐसे ही मामले लेता था, जिनमें प्रमाण के विरुद्ध प्रमाण पेश करना हो या विरोधी पक्ष के सारे प्रमाण रद्द कर देना हो।" वल्लभ भाई के मुकाबले अन्य वकील फौजदारी वकील और मजिस्ट्रेटों का रुख रखकर और पुलिस अधिकारियों के साथ दोस्ती करके अपना काम करते थे, इसके विपरीत वल्लभ भाई मजिस्ट्रेट अथवा पुलिस अधिकारियों की जरा भी परवाह न कर अपना काम करते थे। उनकी खूबी अपने मुकदमे की बारीक से बारीक बातों का खूब अध्ययन कर मुद्दई पक्ष के कमजोर मुद्दे ढूंढ़-ढूंढ़कर रख देने और विपक्षी की तरफ से पेश की गई साक्षियों को तोड़ लेने में थी। वे [illegible] को इस खूबी से करते कि बयान करा लेने के बाद उनके लिए ज्यादा बहस करने का काम नहीं रह जाता था। अदालत में उनकी बहस के भाषण दूसरे वकीलों के मुकाबले बहुत संक्षिप्त, सीधे और सप्रमाण होते थे। वल्लभ भाई स्वभावतया जनता को सतानेवाले पुलिस अधिकारियों और वकीलों का अपमान करनेवाले मजिस्ट्रेटों के प्रति बहुत सख्त रहते थे। परिणामतः वे जिस मुकदमे में वकील बनकर आते उसमें अदालत और मुद्दई के वकील दोनों ही बहुत सावधान रहते थे।

वल्लभ भाई की वकालत और उसके परिणामों में एक पेशेवर कुशल वकील का ही नहीं, अपितु इससे कुछ अधिक उनकी अन्तर्गर्भित उस योग्यता, निर्भीकता, बुद्धि-चातुर्य, चुस्ती और परिश्रम और यशस्वी व्यक्तित्व का भी पूर्वसंकेत था। अतः हम यहां प्रसंगवश उनके वकालत-काल

के कुछ प्रसंगों को उपस्थित करने का लोभ संवरण नही कर पा रहे हैं।

एक अंग्रेज मजिस्ट्रेट बडा अहवादी था। वह अहमदाबाद के बड़े-बड़े वकीलों का भी अपमान कर देता था। उसके पास एक हत्या के मामले में पैरवी करने का अवसर वल्लभ भाई को मिला। वह मजिस्ट्रेट गवाहो को शर्मिन्दा करने और दबाने के लिए प्रत्येक साक्षी के सामने एक बडा आईना रखवा देता था। वल्लभ भाई वाले मामले मे एक पटेल अभियुक्त था। मजिस्ट्रेट ने इसके सामने भी आईना रखवाया और आईने में देखते हुए बयान देने का हुक्म दिया। मजिस्ट्रेट के इस हुक्म के साथ तत्काल ही वल्लभ भाई ने कहा: "इस बात को दर्ज कर लीजिए कि इस आईने को सामने रखकर अभियुक्त का बयान लिया जाता है।" मजिस्ट्रेट ने जवाब दिया: "ऐसा उल्लेख करने की कोई जरूरत नही।" वल्लभ भाई ने फिर कहा: "यह आईना तो शहादत मे पेश हुआ माना जाएगा और मुकदमे के कागजात के साथ सेशन्स कोर्ट मे पहुचेगा।" इसपर मजिस्ट्रेट घबराया, क्योंकि इस तरह नहले पर दहला देनेवाला कोई वकील अब तक उसे मिला ही नही था। फिर भी उसने वल्लभ भाई की बात नहीं मानी और आपस मे गरमागरम बहस हो गई। अन्त में जब वल्लभ भाई यह दरख्वास्त देने लगे कि मुझे यह मामला आपकी अदालत में नही चलाना है, इसका दूसरी अदालत मे तबादला किया जाए तो वह नरम पड़ा और वल्लभ भाई से सफाई के गवाह लाने को कहा। वल्लभ भाई ने जवाब दिया: "मैं यहा एक भी गवाह पेश नही करना चाहता, परन्तु एक बन्द लिफाफे मे मैं गवाहो के नाम लिख देता हू, जिन्हें मैं सेशन्स कोर्ट मे पेश करूगा।" और उन्होंने एक लिफाफे में गवाहो के नाम आदि लिख उसे बन्द कर तथा उस-पर 'यह लिफाफा सेशन्स कोर्ट मे ही खोला जाए' लिखकर अदालत को दे दिया। मजिस्ट्रेट अब और घबराया। उसने लिफाफा खोल लिया और उसमें गवाह के रूप मे पहला नाम स्वयं अपना देखकर वह हैरान हो गया। जिस स्त्री की हत्या होने का अभियोग था, उसी स्त्री को गवाह के रूप में रखा गया था। इसके साथ ही कुछ और अन्य बातें थी जो मजिस्ट्रेट की परेशानी बढा रही थी। आखिर मजिस्ट्रेट एकदम पानी-पानी हो गया और उसने पुलिस के अधिकाश गवाहो पर भरोसा करने से इन्कार कर दिया तथा

उनके खिलाफ अपनी राय लिखी। अन्ततोगत्वा प्रारम्भिक सबूत के आधार पर मुकदमा सेशन्स के सुपुर्द हुआ, स्वयं वल्लभ भाई भी यही चाहते थे।

एक दूसरा मामला रेलवे पुलिस इंस्पेक्टर का था। संयोग से वे वल्लभ भाई के मित्र थे। उनकी अपने ऊपर के अधिकारी के साथ, जो सुपरिटेंडेंट था, नाइत्तफाकी थी। सुपरिटेंडेंट ने उस इंस्पेक्टर को एक नाचीज मामले में फंसाकर उसे बहुत बड़ा रूप दे दिया। रेल के डिब्बे से लगभग एक रुपये की कीमत की जलाऊ लकड़ी अपने नौकर से चोरी कराने का इलजाम लगाकर इंस्पेक्टर को कैद करा दिया। सुपरिटेंडेंट बहुत प्रभावशाली अंग्रेज था। उसका भाई बम्बई सरकार में होम मेम्बर था। उन दिनों रेलवे में इस तरह की छोटी-बड़ी चोरी-डाके की वारदातें बहुत होती थीं। इसी बहाने इस तुच्छ मामले को बहुत बड़ा रूप दे दिया गया और यह बताकर कि अभियुक्त प्रभावशाली है, मुकदमा चलाने के लिए एक विशेष मजिस्ट्रेट की नियुक्ति कराई गई। मामला खेड़ा जिले में चलनेवाला था, किन्तु अहमदाबाद के सरकारी वकील को उसकी पैरवी के लिए खास तौर पर रखा गया। मामला अदालत में भेजने से पहले सारी जांच उस सुपरिटेंडेंट ने स्वयं की थी। ऐसे मामलों में आमतौर पर, क्या अभियुक्त को पहले भी कभी सजा हुई है, इस प्रश्न पर पुलिस बहुत गौर करती है, और यदि कोई सुराग मिल जाए, तो अभियुक्त सजायाफ्ता है, यह सिद्ध करने का पूरा-पूरा प्रयत्न करती है। अतः इस मामले में भी सुपरिटेंडेंट यह जानकारी प्राप्त करने के लिए भरपूर प्रयत्न में जुट गया। इंस्पेक्टर को जब यह बात मालूम हुई कि सुपरिटेंडेंट उसे सजायाफ्ता सिद्ध करना चाहता है, तो उसने वल्लभ भाई को यह जानकारी दी और वल्लभ भाई की सलाह से स्वयं भी सुपरिटेंडेंट के पास जाकर कह दिया: "आप फिजूल इतने परेशान हो रहे हैं। मैं खुद स्वीकार करता हूं कि मुझे पहले एक बार नौ महीने की सजा हुई थी और सारे समय एकान्त कैद में रखा गया था। परन्तु इस बात को तो बहुत समय हो गया। तीस बरस पहले यह सजा भुगती थी, इसलिए उसका कोई महत्त्व नहीं हो सकता।" यह हकीकत सुपरिटेंडेंट ने चार्जशीट पर दर्ज कर दी और मुकदमा अदालत में भेज दिया। जब मामला पेश हुआ तब सरदार बीमार थे। इसलिए अभियुक्त

की ओर से पैरवी करने के लिए उनके बजाए विट्ठल भाई गए। सरकारी वकील के साथ उनकी खूब झड़पें हुईं और तकरार हो गई। जैसा प्रायः तय था उसीके अनुसार मजिस्ट्रेट ने अभियुक्त को अपराधी ठहराकर छः मास की सख्त कैद की सजा दे दी और फैसले में विट्ठल भाई के विरुद्ध कड़ी आलोचना की। बाद में मुकदमे की अपील वल्लभ भाई ने अहमदाबाद के सेशन्स कोर्ट में पेश कराई। अभियुक्त को जमानत पर छोड़ने की दरख्वास्त देने के लिए वहा के एक मशहूर बैरिस्टर को रखा गया। सरकार की ओर से जमानत पर छोड़ने का कड़ा विरोध किया गया और सरकारी वकील ने मामले के महत्त्व पर खास ज़ोर देकर जमानत की अर्ज़ी नामंज़ूर करा दी। अतः वल्लभ भाई ने अपील की सुनवाई तुरन्त ही करने की माग की जो मजूर हो गई और दो-तीन दिन में मामले की सुनवाई के लिए पेशी भी मुकर्रर हो गई। ऐसे मामले कठिनाई से पकड़े जाते हैं। अभियुक्त स्वयं चोरों को पकड़नेवाली पुलिस का अफसर है, इस बात पर ज़ोर देकर मामला बहुत कमज़ोर होने पर भी सरकारी वकील ज़ोरों के साथ बहस करते थे। सफाई के वकील सिर्फ यह दलील देते थे कि जब तक जुर्म साबित न हो जाए, तब तक इस बात पर ध्यान नही दिया जा सकता कि अभियुक्त कौन है? न्यायाधीश अनिर्णीत अवस्था में घिरा हुआ था। सरकारी वकील ने एक और दलील दी कि अभियुक्त पहले नौ मास की सज़ा भुगत चुका है। अतः यह बात भी ध्यान में रखी जाए। यह कहकर प्रमाण-रूप में उसने चार्जशीट पर किया हुआ इस बात का उल्लेख जज को बताया। यह सुनते ही सफाई के बैरिस्टर तो स्तब्ध हो गए और जज ने इसका जवाब मांगा तो वे वल्लभ भाई पर बहुत नाराज़ हुए और कहने लगे कि यदि इस बात की मुझे पहले ही जानकारी दे दी होती, तो मैं अपील न करने की सलाह देता। यह कहकर वे बैठ गए। अभियुक्त का भविष्य तराज़ू पर रखा था। मामला रस्साकशी का होने के कारण सारी अदालत खचाखच भर गई थी। उस वक्त वल्लभ भाई ने खड़े होकर अदालत से प्रार्थना की कि अभियुक्त को पहले सज़ा होने का सबूत हमें दिखाया जाए। जज ने वह उल्लेख वल्लभ भाई को दिखाने का हुक्म दिया। सरकारी वकील क्रुद्ध होकर तर्क करने लगे कि अभियुक्त ने

स्वयं स्वीकार किया है कि उसे पहले एक बार नौ महीने की सज़ा हो चुकी है और उस उल्लेख पर अभियुक्त के स्वयं के हस्ताक्षर भी हैं, फिर और क्या सवूत चाहिए? वल्लभ भाई ने स्वयं वह उल्लेख देखकर जज को वताया। उसमें लिखा था कि तीस साल पहले मुलजिम को नौ महीने की एकान्त जेल की सख्त सजा हुई थी। इसके वाद वल्लभ भाई ने, चार्जशीट में अभियुक्त की उम्र तीस वर्ष की लिखी हुई थी, उसकी तरफ अदालत का ध्यान खींचा। अदालत में वैठे हुए सव लोग ठहाका मारकर हंस पड़े। सरकारी वकील का चेहरा फक पड़ गया। फिर वल्लभ भाई ने अपना सपाटा चलाया कि जांच करनेवाले सुपरिंटेंडेंट में कितनी वुद्धि होनी चाहिए! और ऐसी वातों पर जोर देने वाले सरकारी वकील को खास तौर पर अहमदावाद से वुलवाकर सरकार का व्यर्थ खर्च-खरावा करानेवाले और ऐसे मामले को अनुचित महत्त्व देकर विशेष मजिस्ट्रेट नियुक्त करानेवाले सभी अधिकारियों पर कठोर प्रहार करके विट्ठल भाई पर की गई आलोचनाएं रद्द करने और अभियुक्त को निर्दोष करार देकर छोड़ देने के लिए मज़ेदार, पर जोरदार वहस की। अभियुक्त छूट गया। विट्ठल भाई पर की गई आलोचनाएं रद्द की गईं तथा उलटे सुपरिंटेंडेंट की सख्त आलोचना हुई जिसके कारण उसे इस्तीफा देना पड़ा।

इसी प्रकार एक और मामला, जिस दिन वल्लभ भाई विलायत जाने के लिए वोरसद से प्रस्थान करने वाले थे, उसी दिन कलेक्टर के सामने पेश किया गया। एक अपील में वड़े मज़ेदार ढंग से एक सुनार पर एक स्त्री के साथ व्यभिचार करने के लिए घर में घुस जाने का अभियोग था। उसे छः महीने की सजा सुनाई जा चुकी थी और कलेक्टर के यहां उसकी अपील थी। कलेक्टर का मुकाम वोरसद में था। कलेक्टर साहव शराव में चूर होकर वैठे थे। इसीलिए सरिश्तादार ही वीच-वीच में सवाल पूछने लगा। उसे धमकाकर सरदार ने कहा: "मैं सरिश्तादार के सामने पैरवी करने नहीं आया हूं। मैं तो यह समझकर आया हूं कि मुझे साहव के सामने पैरवी करनी है।" फिर दोनों में जो चखचख हुई उसके कारण कलेक्टर को होश भी आ गया और उसने सरदार से पूछा: "क्या वात है?" सरिश्तादार वोलने ही वाला था कि उसे "वक-वक न

करो" कहकर चुप किया और वल्लभ भाई से अपनी बहस जारी रखने का अनुरोध किया। थोड़ी देर बाद उसने पूछा :

"क्या व्यभिचार कानून मे अपराध है ?" वल्लभ भाई ने जवाब दिया : "नहीं, साहब सुधरे हुए देशो में यह अपराध ही नही है, मगर इस पिछड़े हुए देश में सरिश्तादार और नीचे की अदालत के मजिस्ट्रेट जैसे पुराने कट्टरपंथी और संकीर्ण विचार के ब्राह्मण इस काम को बड़ी कड़ी नजर से देखते हैं।" कलेक्टर ने पाच मिनट में अभियुक्त को छोड़ दिया। सरिश्तादार कुछ नही समझा, परन्तु गुस्से से जलकर रह गया।

संक्षेप मे इस प्रकार लगभग दस वर्षों के अपने वकालत-काल में वल्लभ भाई एक योग्य, अनुभवी और मजे हुए ख्यातिप्राप्त वकीलो की गणना मे आ गए। बोरसद आने पर तीन वर्षों मे ही वल्लभ भाई ने अपनी वकालत से इतना धन अर्जित कर लिया था कि वे आसानी से विलायत जाकर बैरिस्टरी की पढ़ाई कर सकते थे। यद्यपि इन दिनो वल्लभ भाई की वकालत जैसी चल रही थी, उसे देखते हुए उनके विलायत जाने और बैरिस्टरी की डिग्री हासिल करने मे कोई तुक नजर नहीं आती थी, किन्तु मात्र आय की दृष्टि से ही नही, अन्य अनेक कारणों से जिनमें प्रधान रूप से बैरिस्टरी की अपनी प्रतिष्ठा होती है और जिसके कारण उनकी साख-धाक और फीस भी बढ़ जाती है, वल्लभ भाई बैरिस्टरी की डिग्री लेने के लिए कृतसंकल्प हो गए। अतः उन्होंने सन् 1905 मे विलायत जाने का पक्का निश्चय कर लिया और तदनुसार विलायत-यात्रा के लिए जहाज वगैरह के प्रबन्ध के लिए उन्होंने टामस कुक एण्ड सन्स कम्पनी के साथ पत्र-व्यवहार किया और सारी व्यवस्था कर ली। इसी बीच अकस्मात् एक छोटी-सी घटना घट गई जिससे सारा मामला पलट गया। टामस कुक एण्ड सन्स कम्पनी के साथ चल रहे पत्र-व्यवहार का वह अंतिम पत्र, जिसके अनुसार वल्लभ भाई को जहाज पर चढ विलायत-यात्रा करनी थी, उनके अग्रज विट्ठल भाई के हाथ लग गया। वल्लभ भाई और विट्ठल भाई दोनों का ही पत्र-व्यवहार अंग्रेजी में वी० जे० पटेल के नाम से चलता था, इसीलिए यह पत्र भी विट्ठल भाई ने खोल लिया। इसी समय विट्ठल भाई के मन में विलायत जाकर बैरिस्-

टरी की डिग्री हासिल करने का लोभ बढ़ा। अन्ततोगत्वा उन्होंने वल्लभ भाई से कहा : "मैं तुमसे बड़ा हूं, इसलिए मुझे जाने दो। मेरे आ जाने के बाद तुम्हें जाने का मौका मिलेगा, परन्तु तुम्हारे आने के बाद मेरा जाना नहीं हो सकेगा।" आज्ञाकारी अनुज ने विट्ठल भाई की बात मान ली। इतना ही नहीं, उनका विलायत का खर्च भेजने की भी जिम्मेदारी ले ली। घर में या और किसीको भी कुछ बताए बिना दोनों भाई मुवक्किलों के काम का बहाना बनाकर बम्बई गए और विट्ठल भाई विलायत के लिए रवाना हो गए।

दायित्व, जवाबदारी और जोखिम उठाने का साहस वल्लभ भाई में बचपन से ही था जो बढ़ती हुई उम्र के साथ बढ़ने लगा। अपने अग्रज विट्ठल भाई को विलायत भेज वे घर लौटे। घरवालों को सारा वृत्त बताया। इसपर विट्ठल भाई की पत्नी ने खूब कलह मचाया। अब तक बोरसद में दोनों भाई अलग-अलग रहते थे, परन्तु विट्ठल भाई के विलायत चले जाने के बाद वल्लभ भाई ने भाभी को अपने यहां रहने को बुलवा लिया। काशी भाई और भावज जो विट्ठल भाई के साथ ही रहते थे, उन्हें भी वल्लभ भाई ने अपने यहां ही बुलवा लिया। विट्ठल भाई की पत्नी मानताएं मानने लगीं और ब्राह्मण-भोजन, दान-पुण्य आदि करने लगीं, जिससे घर में फिज़ूलखर्ची बढ़ गई। यह सब वल्लभ भाई ने ज़रा भी जी दुखाए बिना सहन किया। किन्तु देवरानी-जिठानी में रोज़ झगड़ा होने लगा और इस प्रकार एक घरेलू क्लेश की स्थिति उत्पन्न हो गई। यह न केवल वल्लभ भाई के स्वभाव के विपरीत था वरन् उन्हें असह्य और कष्टप्रद हो गया। भाई विदेश में थे, अतः भाभी से कुछ कहना उचित न समझ उन्होंने झवेर बा को पीहर भेज दिया और वे विट्ठल भाई के लौट आने तक पीहर ही रहीं। इस प्रकार परिवार में बढ़े हुए खर्च के बोझ को उठाने, पत्नी को पीहर रखने और भाई को विलायत खर्च भेजने की सारी व्यवस्था कर, बिना किसीसे कुछ कहे अपूर्व मनोयोग से अपने वकालत के काम में जुट गए। वकालत का धन्धा वर्ष प्रतिवर्ष बढ़ता ही जा रहा था।

श्री विट्ठल भाई सन् 1906 में विलायत गए और लगभग ढाई वर्ष

वहा रहकर बैरिस्टर बन, सन् 1908 के मध्य में स्वदेश लौटे। भारत लौटकर उन्होने बम्बई में वकालत आरम्भ की और वही पत्नी सहित रहने लगे। इसी बीच झवेर बा बीमार पडी। विट्ठल भाई 1908 के अन्त में उन्हे इलाज के लिए बम्बई ले आए। साथ मणिबेन और डाह्या भाई भी बम्बई आ गए और तभी से विट्ठल भाई के पास रहने लगे। झवेर बा को अंतड़ियों का रोग था, अत. डाक्टरों की सलाह हुई कि उनका आपरेशन करना होगा। इसके लिए उन्हे अस्पताल मे भरती भी करा दिया गया। वल्लभ भाई भी उस समय वहा गए, परन्तु अस्पताल के डाक्टर ने उन्हें कहा कि औषधोपचार से तबीयत में जरा सुधार हो जाए तो बाद में आपरेशन करना ठीक होगा और इसके लिए लगभग पन्द्रह दिन रुकना उचित होगा। डाक्टर के इस परामर्श पर वल्लभ भाई यह कहकर कि आपरेशन करने का निश्चय होने पर मुझे बुलवा लीजिए, वे एक बडे महत्त्वपूर्ण मुकदमे मे हाजिर रहने के लिए दूसरे दिन आणन्द चले आए। इस बीच डाक्टर का विचार बदल गया। उसे तुरन्त आपरेशन करने की जरूरत जान पडी और उसने वल्लभ भाई को खबर दिए बिना आपरेशन कर डाला। आपरेशन के बाद वल्लभ भाई को सफलतापूर्वक आपरेशन हो जाने की सूचना तार द्वारा दे दी। संयोग की बात, दूसरे ही दिन एकाएक स्थिति बिगड गई और जब वल्लभ भाई अदालत मे मुकदमे की पैरवी कर रहे थे, तब वहीं झवेर बा के निधन की सूचना का दूसरा तार मिला। वल्लभ भाई के लिए यह अप्रत्याशित आघात एक ऐसे अवसर पर पड़ा जब वे हत्या के एक महत्त्वपूर्ण मामले में, जो स्वय भी जीवन-मरण की निर्णायक स्थिति तक पहुंच चुका था, पैरवी कर रहे थे। उनके लिए यह अवसर अत्यन्त दु खपूर्ण तो था ही, धर्मसंकट का भी बन गया। हत्या का मुकदमा, अभियुक्त प्रतिष्ठित व्यक्ति, फिर वे एक ऐसे महत्त्वपूर्ण गवाह से जिरह कर रहे थे जिसे उसी दिन सावधानीपूर्वक पूरा करना था। अत. ऐसी विषम स्थिति मे यदि हाथ में [illegible] मुकदमे की पैरवी में जरा भी ढील अथवा असावधानी हो जाए तो अभियुक्त को फांसी की सजा हो सकती थी। अत. ऐसा दारुण [illegible] पीकर भी अपने धैर्य एव आन्तरिक दृढता को कायम

उन्होंने अपने हाथ में लिया हुआ काम बड़े मनोयोग और सावधानी-पूर्वक पूरा किया और अदालत का काम पूरा होने पर ही उन्होंने तार का समाचार औरों को सुनाया। जीवन-संगिनी के वियोग और उसमें भी अन्तिम समय भेंट न हो सकने का मार्मिक आघात वल्लभ भाई ने बड़े धैर्य और साहस के साथ सदा के लिए सह लिया। उस समय उनकी आयु तैंतीस वर्ष की थी। दुबारा शादी कर लेने का आग्रह वल्लभ भाई से, सगे-सम्बन्धियों और मित्रों ने अनेक बार किया, परन्तु पुनर्विवाह न करने के अपने विचार पर वे बड़ी मज़बूती से डटे रहे। अनेक स्थानों से पत्र आए, कुलीन और सुन्दर कन्याओं के चित्र भी उन्हें भेजे गए, परन्तु वे अपने निश्चय से तिलमात्र भी नहीं डिगे।

पत्नी के वियोग से आक्रान्त वल्लभ भाई कौटुम्बिक ज़िम्मेदारियों को संभालते हुए अपनी आजीविका वकालत में बड़े मनोयोग से जुटे ही थे कि इसी बीच एक और दुर्घटना घट गई। विट्ठल भाई की पत्नी बीमार पड़ीं। उन्हें बोरसद बुलवाकर अपने यहां रखा। यहां वे 1910 के आरम्भ में चल बसीं। एक वर्ष पूर्व ही 11-1-1909 में झवेर बा के निधन के पश्चात् वल्लभ के ऊपर यह दूसरा आघात था जिसके कारण उन्हें बहुत असुविधा और कष्ट उठाने पड़े।

विलायत-यात्रा

परिस्थितियों की विपरीतता में भी उद्देश्य-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बने रहना वल्लभ भाई की चित्तवृत्ति का प्रधान लक्षण था। बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए विलायत जाने का संकल्प वे बहुत पहले कर चुके थे। उनकी विलायत-यात्रा के क्षणों में एकाएक घटनाक्रम कुछ इस तरह बदला कि अपने स्थान पर अग्रज को भेजना ही उन्होंने श्रेयस्कर समझा अब विट्ठल-भाई बैरिस्टर बनकर आ चुके थे। अतः पारिवारिक दायित्वों से मुक्त हो, जो उन्हें विट्ठल भाई की अनुपस्थिति के कारण उठाने पड़े थे, अपनी विलायत-यात्रा की तैयारी की। विट्ठल भाई की तरह वल्लभ भाई ने भी अपने विलायत जाने की बात बोरसद में पहले किसीको नहीं बताई। बोरसद से रवाना होने के दिन कचहरी से घर आने के बाद

अपने एक डाक्टर मित्र तथा अन्य दो-चार निकटवर्तियों से बात की। बच्चों की, उनके खर्च की और विलायत के अपने खर्च की सारी व्यवस्था तो उन्होंने पहले ही कर ली थी। छोटे भाई काशीभाई उन्हीं दिनों वकील बनकर बोरसद आए थे। अतः उन्हे परिवार और कामकाज सौंपकर रात को बम्बई के लिए रवाना हो गए। वहा से अगस्त 1910 को जहाज़ पर बैठे। इसके पूर्व वल्लभ भाई ने समुद्री जहाज़ कभी देखा तक नही था। विलायती पोशाक भी उन्होंने उसी दिन पहनी थी। मेज-कुर्सी पर छुरी-काटे से खाना भी उन्होने कभी नही खाया था। अतः इन सब बातों से अनभिज्ञ एक सीधे-सादे देहाती की तरह जहाज पर चढ गए। बम्बई से रवाना होते वक्त विट्ठल भाई ने काठियावाड के एक छोटे रजवाड़े के ठाकुर का साथ कर दिया था। वल्लभ भाई कानून की कुछ पुस्तकें भी अपने साथ ले गए जिन्हे वे रास्ते मे पढते हुए समय का सदुपयोग करते रहे।

लन्दन पहुंचने पर पहले दिन वल्लभ भाई अपने साथी ठाकुर के साथ सेसिल होटल मे ठहरे। किन्तु यह होटल इतना महंगा था कि दूसरे ही दिन श्री जोरा भाई वा भाई पटेल, जो वेज वाटर में रहते थे, उनके यहां जाना पडा। बाद में बोर्डरों को रखनेवाली एक स्त्री के यहा रहने की व्यवस्था कर ली।

बैरिस्टरी की पढ़ाई के लिए वे मिडिल टेम्पल मे भरती हुए। कुछ ही समय बाद परीक्षा होने वाली थी। कानून की किताबें विशेषकर 'रोमन ला' तो उन्होने जहाज में ही पढ़ डाला था, अत. इस परीक्षा मे रोमन ला के पर्चे में बैठे और बहुत अच्छे नम्बरो से आनर्स के साथ प्रथम नम्बर मे उत्तीर्ण हुए।

बैरिस्टर बनने के लिए कुल बारह टर्म (प्रत्येक टर्म तीन मास की) पूरी करनी पडती थी। प्रत्येक टर्म में कुछ भोज (डिनर्स) होते हैं। इनमें से कम से कम कुछ तो प्रत्येक प्रत्याशी को लेने ही पड़ते हैं। इसलिए आम तौर पर तीन वर्ष मे बैरिस्टर होते हैं। परन्तु छ टर्म पूरे करने के बाद यानी डेढ साल बाद किसीको पूरी परीक्षा देनी हो, तो उसे देने दी जाती है। इस पूरी परीक्षा मे जो आनर्स मे उत्तीर्ण होता है, उसे दो टर्म की

माफी मिलती है।

वल्लभ भाई छः टर्म पूरी करके पूरी परीक्षा में बैठने की तैयारी में लग गए। पूरी परीक्षा देने से पहले तैयारी की पूर्व-परीक्षा के तौर पर एक परीक्षा होती है। उसमें 'इक्विटी' के विषय में जो प्रथम आता है, उसे पांच पौंड का पुरस्कार मिलता है। वल्लभ भाई इस परीक्षा में बैठे और 'इक्विटी' का पुरस्कार उनके और मिस्टर जी० डेविस के बीच में बांटा गया। यही मि० डेविस बाद में आई० सी० एस० बनकर हिन्दुस्तान आए और अहमदाबाद में डिस्ट्रिक्ट एण्ड सेशन जज़ हुए। तदुपरान्त ये सिन्ध के चीफ कोर्ट के प्रधान न्यायाधीश बने। वल्लभ भाई और इनकी अच्छी मित्रता थी।

उन दिनों और आज भी भारतीय विद्यार्थी विलायत जाकर जब स्वदेश लौटते हैं, तो उनका जीवन बदल जाता है। इसके अन्य जो भी कारण हों, उनमें प्रधान रूप से अल्पवय और अनुभवहीनता के कारण सहज ही वे पश्चिमी प्रभाव के शिकार हो जाते हैं। वल्लभ भाई के साथ यह बात नहीं थी। वे परिपक्व आयु और बुद्धि की प्रौढ़ता में विलायत गए थे। स्वदेश में ही उन्होंने जीवन के पूर्ण अनुभव उठा लिए थे। अतः 'सूरदास की काली कांवरि चढ़ै न दूजो रंग' की भांति, वे पश्चिमी सभ्यता से सदा अप्रभावित रहे। बड़े परिश्रमपूर्वक उन्होंने विद्याध्ययन आरम्भ किया और नित्यप्रायः सतरह घण्टों तक अध्ययन में रत रह अपने उद्देश्य-पूर्ति के लिए सचेष्ट हो गए। वे अपने निवास-स्थान से नित्य ही टेम्पिल के पुस्तकालय, जो लगभग ग्यारह मील दूर था, सवेरे ही पहुंच जाते और वहां तन्मयता से तब तक पढ़ते रहते जब तक वहां चपरासी पुस्तकालय बन्द करने की उन्हें सूचना न देता। पुस्तकालय में ही दूध और रोटी मंगवाकर खा लेते।

इन्हीं दिनों मई, 1911 में उनके पैर में नहरुआ का रोग हो गया। नहरुआ बहुत पतला तथा बहुत लम्बा एक ऐसा कीड़ा होता है जो शरीर के अन्दर बराबर घुसता जाता है। यदि वह खींचने में टूट जाए तो शरीर के अन्य भागों में भी फैल जाता है। उसको आपरेशन द्वारा निकाला जाता है। वल्लभ भाई इस व्याधि से मुक्ति के लिए एक भारतीय विद्यार्थी

डॉक्टर पी० टी० पटेल की सम्मति से एक नर्सिंग होम मे भरती हो गए। वहा दो बार आपरेशन किया गया, किन्तु नहरुआ नही निकला और रोग बराबर बढने लगा। इस स्थिति में सर्जन ने सलाह दी कि यदि जान बचानी है तो पैर काटना होगा। इसपर डॉ० पी० टी० पटेल ने अपने एक प्रोफेसर को रोग समझाकर उससे पुन. आपरेशन करवाया। यह आपरेशन वल्लभ भाई ने बिना क्लोरोफार्म के करवाया और आखिर तक सिसकी भी न ली। डॉक्टर बडा चकित हुआ और बोला : "ऐसा साहसी रोगी हमने पहली बार देखा है।" इस आपरेशन से नहरुआ निकल गया और वल्लभ भाई पूर्णतया रोगमुक्त हो गए।

वल्लभ भाई ने अपनी अन्तिम सम्पूर्ण परीक्षा जून, सन् 1912 में उत्तीर्ण की। उसमें वे आनर्स के साथ पहले नम्बर पर पास हुए और इसपर उन्हें पचास पोण्ड का नकद इनाम भी मिला। परीक्षा में जैसी अद्भुत सफलता उन्हे मिली उससे वहा के हिन्दुस्तानियों में तो उनका बहुत नाम हुआ ही, कुछ एंग्लो-इण्डियनो का भी ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। मि० शेपर्ड नामक एक सेवा-निवृत्त आई० सी० एस०, जो उत्तरी विभाग के कमिश्नर के रूप में गुजरात में रह चुके थे, ने जब अखबार में यह पढा तो वल्लभ भाई से मिलने गए। अपना परिचय देकर उन्हें बधाई दी और अपने घर भोजन पर बुलाया।

विलायत में बैरिस्टरी के पदवीदान समारोह की विधि बडी भव्य और आकर्षक होती है। सारी टर्म पूरी होने पर वल्लभ भाई का नाम बैरिस्टरो में लिखने का समय आया। यह सम्पूर्ण कार्यवाही जिस सभा-भवन में होती है, वहां बडे ठाट-बाट से जुलूस के आकार में जाना पडता है। प्रथम नम्बर में उत्तीर्ण होने के कारण वल्लभ भाई को बड़े सम्मान का स्थान मिला। जुलूस के आगे कार्यकारिणी का अध्यक्ष, उसके पीछे आनर्स में प्रथम नम्बर पर आए हुए विद्यार्थी की हैसियत से वल्लभ भाई, और उनके पीछे सारे बेंचर तथा उनके बाद नये बैरिस्टर बननेवाले—इस क्रम से जुलूस सभा-भवन की ओर चला। स्वाभाविक ही सभी लोगो का, तमाम दर्शको का ध्यान वल्लभ भाई की ओर लगा था।

बैरिस्टरी की सम्पूर्ण विधि पूर्ण कर, डिग्री ले, वल्लभ भाई ने

विलायत से विदा ली और गुरुवार 13 फरवरी, 1913 को अपनी मातृ-भूमि बम्बई के बन्दरगाह पर उतर पड़े।

स्वदेश लौटने पर बैरिस्टरी के लिए उन्होंने अहमदाबाद चुना। इसके कुछ अन्य कारणों के साथ एक प्रधान कारण यह भी था कि उनके अग्रज विट्ठल भाई इन दिनों सार्वजनिक जीवन में काम करने लगे थे। वे स्वराज्य संस्थाओं की ओर से बम्बई की धारासभा के एक सदस्य थे। वकालत और लोकसेवा दोनों ही काम एकसाथ न चलने की स्थिति में दोनों भाइयों ने तय किया कि विट्ठल भाई धारासभा के काम में अपना सारा समय दें और वल्लभ भाई वकालत कर विट्ठल भाई का भी खर्च वहन करें, जैसाकि इस संबंध में वल्लभ भाई के मोड़ासा में सन् 1921 के भाषण से स्पष्ट है :

"स्वतन्त्रता चाहिए तो इस देश में संन्यासी होना चाहिए, स्वार्थ-त्याग करके सेवा करनी चाहिए। इसलिए हम दोनों ने निश्चय किया कि दोनों में से एक देश-सेवा करे और दूसरा कुटुम्ब-सेवा करे। उस वक्त से मेरे भाई ने इतनी अच्छी तरह चलता हुआ धन्धा छोड़कर देश-सेवा का काम शुरू कर दिया और घर का काम चलाने का भार मेरे सिर पर आया। इस प्रकार पुण्य कार्य उनके हिस्से में आया और मेरे सिर पर पाप का काम आ पड़ा। परन्तु यह समझकर मन को बहलाता था कि उनके पुण्य में मेरा भी हिस्सा है।"

वल्लभ भाई अपनी पूर्व-वकालत के दिनों में योग्यता और परिणामों की सफलता के लिए इस क्षेत्र में ख्याति प्राप्त कर चुके थे। अब वे बैरि-स्टर बनकर आए थे। अतः उनकी आय और प्रतिष्ठा दोनों में ही चार चांद लग गए। अहमदाबाद में उन दिनों कुल छः-सात बैरिस्टर थे, इनमें भी अधिक प्रैक्टिस वाले केवल दो या तीन ही थे। स्वाभाविक ही वल्लभ भाई की ओर लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ और वकील-मण्डली तथा आफीसर वर्ग में वल्लभ भाई का, उनके रोबीले व्यक्तित्व के कारण आशा, आकर्षण और भयमिश्रित भावनाओं से स्वागत हुआ।

सार्वजनिक जीवन की ओर

यद्यपि वल्लभ भाई, जैसा ऊपर कहा गया है, विलायत से लौटने के बाद विट्ठल भाई को सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करने की छूट दे स्वयं पारि-

वारिक दायित्व संभाल रहे थे; किन्तु अपनी बढ़ती हुई प्रतिष्ठा और स्वयं की भी सेवा-परायण वृत्ति के कारण, मात्र जीविका उपार्जन तक अपने को सीमित रखना उन्हें स्वीकार नहीं था। अहमदाबाद आते ही वे गुजरात क्लब के सदस्य बन गए थे। क्लब में अन्य बातों एवं गपशप के साथ अहमदाबाद के सार्वजनिक जीवन तथा देश की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक स्थिति की भी खुलकर चर्चा होती थी। इन्हीं दिनों, सन् 1917 में वल्लभ भाई एक सदस्य के रूप में अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी में चुनकर गए। बाद में उनको म्युनिसिपैलिटी में सेनिटरी कमेटी का चेयरमैन चुना गया। सन् 1917 में ही भारत के अन्य स्थानों की भांति अहमदाबाद में भी प्लेग का भीषण प्रकोप हुआ। परिणामतः नित्य ही सैकड़ों व्यक्ति मरने लगे। इस समय वल्लभ भाई ने बड़ी तत्परता और साहस के साथ सारे नगर के लोगों को निकालकर जंगलों में बसाया और उनकी प्राण-रक्षा की। फिर यह सारा काम, इस भयानक प्लेग के समय भी, वे स्वयं अहमदाबाद में रहकर ही अपने निरीक्षण में करवाते रहे। इससे अधिक सेवा-परायण और जीवन की निस्पृहता का प्रमाण और क्या हो सकता है? इससे म्युनिसिपैलिटी के कर्मचारियों को भी अपूर्व प्रेरणा मिली और नगर का नक्शा ही बदल गया। इसी प्रकार सन् 1918 में जब देश में इन्फ्लुएंजा फैला तो अहमदाबाद भी उसकी लपेट में आ गया। उस समय भी वल्लभ भाई ने घर-घर इन्फ्लुएंजा मिक्सचर निशुल्क बंटवाया और जनता की स्वास्थ्य-रक्षा-सम्बन्धी शिक्षा का सारे नगर में व्यापक प्रबन्ध किया। इस प्रकार अपनी निःस्वार्थ और तत्परतापूर्ण सेवा-परायण वृत्ति से वे न केवल अहमदाबाद की जनता के श्रद्धाभाजन बन गए, अपितु अहमदाबाद नगर को सफाई और सुव्यवस्था की दृष्टि से एक नया रूप देने के कारण उनकी ख्याति भी बढ़ी और वे बहुत जल्दी म्युनिसिपैलिटी के भावी नेता के रूप में लोगों के सामने आ गए।

असहयोग आन्दोलन तक

गांधीजी सन् 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे। वहां उन्हें

अपने प्रयोगों एवं कार्यों में जो सफलता मिली उसका देशव्यापी प्रभाव पड़ा था। वे भारत लौटने पर कुछ दिन शान्तिनिकेतन में रहे और उसके बाद अप्रैल मास में अहमदाबाद आए और कोचख नामक उपनगर के पास बंगला किराये पर लेकर वहां अपना आश्रम खोला। इसके साथ ही आश्रम के एक अंग के रूप में एक राष्ट्रीय पाठशाला खोलने का जो उनका विचार था, उसकी योजना समझाने वे एक-दो बार गुजरात क्लब आए थे। दूसरे बहुत-से सदस्य उनसे मिलने तथा उनका भाषण सुनने के लिए वहां इकट्ठे हुए; परन्तु वल्लभ भाई, जो अपने मित्रों के साथ क्लब के मकान के चबूतरे पर बैठे-बैठे ताश (ब्रिज) खेल रहे थे, वहां से नीचे नहीं उतरे। इतना ही नहीं, जब उनके साथी श्री मावलंकर गांधीजी के पास जाने के लिए उठे तो—"इसमें क्या सुनना है?" यह कहकर उन्हें भी उन्होंने रोका। स्पष्ट है, अब तक वल्लभ भाई पर गांधीजी का कोई असर नहीं था। बल्कि इसके विपरीत उनके मन में गांधीजी एक दकियानूसी और हास्यास्पद व्यक्ति से अधिक कुछ नहीं थे। और यही वजह थी कि वल्लभ भाई गांधीजी की अनेक बातों का मजाक उड़ाया करते थे। एक बार उन्होंने अपने मित्रों से कहा: "गांधीजी इन लोगों के सामने ब्रह्मचर्य की बातें क्यों कर रहे हैं? यह तो भैंस को भागवत सुनाने जैसी बात है।" वल्लभ भाई का गांधीजी से सर्वप्रथम सम्पर्क 1916 में हुआ था।

जुलाई, सन् 1917 में श्री वल्लभ भाई गुजरात क्लब के सेक्रेटरी चुने गए। इन दिनों गांधीजी बिहार के चम्पारन जिले में नीलवरों से पीड़ित वहां की जनता के लिए गांव-गांव घूमकर सेवा-कार्य कर रहे थे। उनके इस कार्य का देशव्यापी प्रभाव पड़ रहा था। एक दिन एकाएक मोतीहारी (बिहारी) में मजिस्ट्रेट ने गांधीजी के इस कार्य पर पाबन्दी लगाकर उन्हें चम्पारन जिले से चले जाने का आदेश दिया। गांधीजी ने मजिस्ट्रेट का यह हुक्म मानने से इन्कार कर दिया और अपना काम जारी रखा। तब उन-पर मुकदमा चला और इस मुकदमे में गांधीजी ने अपना जो बयान दिया उसने देश-भर में तहलका मचा दिया। वल्लभ भाई और उनके साथियों ने भी यह बयान अखबारों में पढ़ा और सभी गांधीजी की जवांमर्दी के कायल

हो गए। यहीं से वल्लभ भाई के मन में गांधीजी के प्रति आदर-भाव बढ़ा, जो उनके भावी राजनैतिक जीवन का सूत्रधार सिद्ध हुआ।

वल्लभ भाई सन् 1915 से ही गुजरात सभा के सदस्य थे, और सार्वजनिक जीवन की शुद्धि एवं सक्रियता के लिए अपेक्षाकृत अन्य लोगों से आगे बढ़कर काम करने में प्रसिद्ध थे। गुजरात सभा ने सन् 1917 की राजनैतिक परिषद् की अध्यक्षता के लिए गांधीजी को आमंत्रित किया जो उन्होंने स्वीकार कर लिया। परिषद् गोधरा में हुई और गांधीजी की अध्यक्षता के कारण यह कार्यक्रम और प्रभाव की दृष्टि से अब तक देश में होनेवाली अन्य राजनैतिक परिषदों से अपूर्व और महत्त्वपूर्ण रही। यद्यपि परिषद् गुजरात की थी, तथापि बम्बई के अधिकतर नेता इसमें सम्मिलित हुए थे। श्री विट्ठल भाई पटेल यद्यपि इन दिनों बम्बई रहते थे, तथापि वे गुजरात के ही माने जाते थे, परन्तु कायदे आज़म जिन्ना का इस परिषद् में आना अवश्य एक विशेषता थी। उन दिनों हिन्दू-मुस्लिम एकता के कट्टर पक्षपाती और हिमायती की हैसियत से उनका गोधरा में शानदार स्वागत हुआ था। इसके अतिरिक्त लोकमान्य तिलक और उनके निकट सहयोगी श्री खापर्डे ने भी इस परिषद् में उपस्थित होकर उसका गौरव बढ़ाया था। इस परिषद् की प्रधान खूबी यह थी कि सभी नेताओं से आग्रह करके गांधीजी ने गुजराती में भाषण दिलवाए। समाचारपत्रों में जब यह बात सरोजनी नायडू ने पढ़ी तो उन्होंने गांधीजी को पत्र लिखा कि हमारे जैसों पर तो आप हर बार हिन्दुस्तानी में भाषण कराने का जुल्म करते ही हैं और हम उसके सामने झुक भी जाते हैं, परन्तु आपने महान् (ग्रेट) जिन्ना से गुजराती में भाषण दिलवाया, जिसे मैं आपकी एक चमत्कारी फतह मानती हूं और इसके लिए आपको मुबारकबाद देती हूं। तिलक से भी गांधीजी ने हिन्दी में बोलने की प्रार्थना की थी, परन्तु उन्होंने यह कहकर कि मैं अच्छी हिन्दी नहीं बोल सकूंगा, मराठी में भाषण दिया जिसका श्री खापर्डे ने गुजराती अनुवाद किया। अब तक इन परिषदों के भाषण आदि अंग्रेजी में ही होते थे, किन्तु इस परिषद् में एक भी भाषण अंग्रेजी में नहीं हुआ, यह गांधीजी की अध्यक्षता और उपस्थिति का प्रभाव था।

इस परिषद् में कुछ अन्य बातें और हुईं। अब तक ज़िला परिषदों से लेकर अखिल भारतीय कांग्रेस तक की परिषदों की एक कार्य-प्रणाली यह थी कि पहला प्रस्ताव ब्रिटिश साम्राज्य और ताज के प्रति वफादारी का होता था। इस प्रथा को गांधीजी ने तुड़वाया। उनका कथन था कि ब्रिटिश साम्राज्य की वफादारी में वे किसीसे कम नहीं हैं, परन्तु बिना किसी प्रसंग-विशेष अथवा कारण के इस प्रकार बात-बात में वफादारी की बात दोहराकर अथवा प्रस्ताव पास कर हम अपनी लघुता ही दिखाते हैं, अंग्रेज़ अपनी परिषदों का आरम्भ कोई ब्रिटिश साम्राज्य और ताज के प्रति वफादारी के प्रस्ताव से नहीं करते। फिर हम ही क्यों राजभक्ति का यह स्वांग रचें, यह समझ में नहीं आता। गांधीजी की इस बात का लोगों के दिल पर बड़ा असर हुआ और जो लोग मन से ब्रिटिश साम्राज्य या उसके ताज के प्रेमी नहीं थे उन्हें तो एक नया ही दृष्टिकोण अपनी भावनाओं और विचारों को व्यक्त करने को मिल गया। यह इस परिषद् की दूसरी विशेषता थी।

तीसरी बात इस परिषद् में यह तय हुई कि परिषद् एक कार्य-समिति नियुक्त करे जो दूसरे वर्ष परिषद् का अधिवेशन होने तक काम करती रहे। यह एक नई प्रथा थी जिसका बीजारोपण गांधीजी ने गोधरा की इस राजनैतिक परिषद् में किया और जिसके परिणामस्वरूप ये परिषदें और कांग्रेस अधिवेशन तक, जो मात्र वार्षिक उत्सव से अधिक कुछ नहीं होते थे, आगे चलकर देश में राजनैतिक चेतना लाने का एक कारगर साधन बने। परिषद् के अध्यक्ष के नाते कार्य-समिति का संगठन गांधीजी ने किया और स्वयं ही इसके अध्यक्ष रहकर वल्लभ भाई को इसका मन्त्री नियुक्त किया। कार्य-समिति का कार्यालय अहमदाबाद में रखा गया। यद्यपि इन दिनों गांधीजी अपना अधिकांश समय बिहार को दे रहे थे फिर भी प्रति माह कुछ समय के लिए वे अहमदाबाद आ जाते थे और यहां के काम-काज को दिशा-निर्देश देकर अपना नेतृत्व बनाए हुए थे।

हाल ही में होमरूल लीग की स्थापना हो चुकी थी और सारे देश में बेगार-विरोधी आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था। गांधीजी ने इस क्षेत्र के सार्वजनिक जीवन की पुष्टि का जो कार्यक्रम बनाया, परिषद् के मन्त्री के

नाते उसे मूर्त्तरूप देने का दायित्व वल्लभ भाई पर था। उन्होने बड़े उत्साह व लगन से सारे कार्यक्रम को हाथ मे ले लिया। इसमें बेगार-प्रथा की समाप्ति प्रमुख थी। वल्लभ भाई ने इस सम्बन्ध मे कमिश्नर से पत्र-व्यवहार किया। कमिश्नर द्वारा उत्तर न मिलने की स्थिति मे अन्त मे उन्होने सात दिन का नोटिस दिया और यह भी स्पष्ट कर दिया कि यदि इसका भी उत्तर नही मिला, तो वे हाईकोर्ट के फैसले के आधार पर बेगार को गैर-कानूनी ठहराकर लोगों को बेगार बन्द करने की सूचना दे देंगे। इसपर कमिश्नर ने उक्त नोटिस की अवधि समाप्त होने के एक दिन पूर्व वल्लभ भाई को बुलाकर सारी स्थिति स्पष्ट कर उनके मनो-नुकूल निर्णय दे दिया। इस निष्कर्ष की सूचना उन्होने गाधीजी को चम्पारन भेजी। गाधीजी वल्लभ भाई की इस कामयाबी पर बहुत प्रसन्न हुए। यही से उनका गाधीजी के साथ सम्पर्क बढा और वे राजनैतिक क्षेत्र मे उनके एक विश्वासपात्र और निकट अनुयायी बन गए।

सन् 1917 मे अतिवृष्टि के कारण खेडा जिले मे खेती की सारी फसल सड़-गलकर चौपट हो गई। यहा तक कि मवेशियो के लिए चारा-घास भी उत्पन्न नहीं हुई। इस विषम स्थिति मे सरकार ने किसानों को राहत देने की बात तो दर-किनार रही, लगान-वसूली मे कड़ाई का आदेश दिया। अधिकारियो की इस ज्यादती के खिलाफ़ गुजरात सभा ने कलेक्टर और कमिश्नर आदि से लिखा-पढी की, किन्तु कोई सुनवाई नही हुई। अन्ततोगत्वा गांव-गाव मे सार्वजनिक सभाए कर सरकारी निर्णय के प्रति विरोध प्रकट किया जाने लगा। गाधीजी इन दिनो चम्पारन मे थे, जहा उन्हें इन सभाओ की कार्यवाही और अधिकारियो के व्यवहार-बर्ताव की पूरी-पूरी जानकारी भेजी जाती रही। आखिर सरकार के अत्याचार बढते ही गए और कर-बन्दी सत्याग्रह करने के सम्बन्ध मे विचार किया जाने लगा। गाधीजी भी चम्पारन से अब आ गए और उनके आगमन से खेड़ा ज़िले के अत्याचार-पीड़ित किसानो मे एक नई आशा, विश्वास और उत्साह की लहर दौड गई। 20 मार्च, 1917, को महात्माजी ने पूछा : "खेड़ा चलने को मेरे साथ कौन-कौन तैयार है ?" सबसे पहले जो नाम उन्हे मिला, वह वल्लभ भाई का था। यहीं से वल्लभ भाई के जीवन की

दिशा बदली और उन्होंने यहीं से गांधीजी के एक विश्वस्त और विनम्र साथी एवं अनुयायी के रूप में कर्त्तव्य-पालन की दीक्षा ग्रहण की।

22 मार्च, 1918 को खेड़ा ज़िले के तमाम किसानों की एक बड़ी सभा नडियाद में आयोजित की गई। इसमें सत्याग्रह की लड़ाई का मंगलाचरण करते हुए गांधीजी ने एक प्रेरक और ओजस्वी भाषण दिया। अब वल्लभ भाई तन-मन से गांधीजी द्वारा निर्दिष्ट कार्यक्रम को पूरा करने में जुट गए। अप्रैल, 1918 में उन्होंने गांव-गांव घूमकर अपढ़ किसानों में करबन्दी सत्याग्रह का महत्त्व और उसका पवित्र सन्देश पहुंचाना आरम्भ किया। अन्त में किसान खुलकर सरकार से संघर्ष कर अपनी मांग पूरी कराने पर तुल गए।

30 मार्च को खेड़ा ज़िले के किसानों की बड़ी आम सभा नडियाद में हुई। इसमें बम्बई की होमरूल लीग के अन्य सदस्य सम्मिलित हुए। सभा में सभापति पद से वल्लभ भाई ने जो भाषण दिया उससे उनके इन दिनों के सीधे, पर तीखे वाक्य-प्रहारों का तो पता चलता ही है, साथ ही सरकार से साफ बात कहने और उसे सबक सिखाने में वे कितने सिद्धहस्त थे यह भी ज्ञात होता है। अतः उनके इस भाषण का कुछ अंश यहां उन्हींके शब्दों में उद्धृत करना उपयुक्त होगा :

"इस लड़ाई से सारे देश में आग लग जाएगी। दुःख सहन किए बिना सुख नहीं मिलता, और मिल जाए तो वह लम्बे समय तक टिकता नहीं। मजबूत और दृढ़ विचारों की जनता हो, इसीमें राज्य की शोभा है। नालायक और डरपोक प्रजा की वफादारी में सार नहीं। निडर और स्वाभिमान की रक्षा करनेवाली वफादार प्रजा ही सरकार को शोभा देती है···"

एक ओर करबन्दी का आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था, तो दूसरी ओर सरकारी अधिकारियों द्वारा कुर्कियों का ज़ोर बढ़ता जा रहा था। गांधीजी और वल्लभ भाई तथा दूसरे कार्यकर्ता गांव-गांव घूम-घूमकर लोगों को हिम्मत बंधा रहे थे और उन्हें अपनी प्रतिज्ञा पर कायम रखने के लिए जागरूक बनाए हुए थे। गांधीजी के सत्याग्रह का यह कार्यक्रम खेड़ा ज़िले की प्रजा और गुजरात के कार्यकर्ताओं के लिए एक सर्वथा नई, किन्तु कीमती तालीम और कसौटी थी जिसमें उत्तीर्ण होना कम कठिन बात नहीं थी।

वल्लभ भाई गांधीजी की सारी कार्यवाही, उनके भाव-विचार और आचरण को बड़ी पैनी दृष्टि से देख रहे थे और एक श्रद्धावान शिष्य की भांति उन्होंने इस सारे संघर्ष में उनका इस प्रकार सच्चा और अक्षरशः अनुसरण कर लिया कि थोड़े ही दिनों में इस ओर से गांधीजी बिलकुल निश्चिन्त हो गए। गांधीजी की यह निश्चिन्तता आकस्मिक नहीं थी। वे संघर्ष के इस दौर में बड़ी बारीकी से वल्लभ भाई की मानसिक स्थिति, अन्तर्प्रवृत्तियों और आचरण का बराबर अध्ययन करते रहे। 4 अप्रैल को करमसद की आम सभा में वल्लभ भाई के संबंध में विचार व्यक्त करते हुए उन्होंने जो शब्द कहे उनसे उनकी पारखी दृष्टि का पता लग जाता है। उन्होंने कहा :

"यह गांव वल्लभ भाई का है। वल्लभ भाई यद्यपि अभी आग में हैं और उन्हें अच्छी तरह तपना है, परन्तु मेरा ख्याल है कि वे उसमें से कुन्दन बनकर निकलेंगे।"

अन्ततोगत्वा वल्लभ भाई को अपने उद्देश्य में सफलता मिली और इस प्रकार किसानों में अपनी पहुंच और प्रतिष्ठा बढ़ाते हुए उन्होंने गांधीजी के हृदय में भी अपना स्थान बना लिया। आन्दोलन की समाप्ति पर उसकी पूर्णाहुति का उत्सव मनाया गया। 29 जून को नडियाद में एक आम सभा हुई जिसमें गांधीजी ने वल्लभ भाई के परिचय और प्रशंसा में जो शब्द कहे, वे उल्लेखनीय हैं।

उन्होंने कहा : "सेनापति की चतुरता उसके सहायकों की पसंद पर निर्भर है। अनेक लोग मेरी बात मानने को तैयार थे किन्तु मेरे सामने सवाल उठा कि मेरा उप-सेनापति कौन हो? इसी समय मेरी दृष्टि वल्लभ भाई पर पड़ी। विचार उठा, यह अक्खड़ आदमी कौन है और यह क्या काम करेगा। किन्तु जैसे-जैसे वे मेरे निकट आए, मेरा उनपर विश्वास बढ़ता गया और वे मेरे लिए अनिवार्य हो गए। यदि मुझे वल्लभ भाई न मिले होते तो जो काम हुआ है, वह न होता।"

इन दिनों संसार में प्रथम महायुद्ध का दौर-दौरा था और इंगलैंड जर्मनी के साथ निर्णायक युद्ध कर रहा था। यहां वाइसराय ने भारतीय जनता की सहायता प्राप्त करने के लिए 29 अप्रैल, 1918 को दिल्ली

में कुछ बड़े नेताओं से मुलाकात की । सहायता सम्बन्धी वाइसराय के प्रस्ताव का "मुझे अपनी ज़िम्मेदारी का पूरा ख्याल है ।" कहकर गांधीजी ने समर्थन किया और अपने दिए हुए वचन के अनुसार उन्होंने सरकार की सहायता के लिए सैनिक भर्ती करने का काम अपने हाथ में ले लिया। इस कार्य के लिए गांधीजी ने गांव-गांव घूमकर काम किया। उनके इस दौरे में वल्लभ भाई साथ रहे । गांधीजी के शब्दों में 'रिक्रूटिंग सार्जेण्ट' (भरती-अफसर) वन गए थे। इस कार्य में दोनों को ही कोई विशेष सफलता नहीं मिली। कठिनाई से केवल सौ व्यक्तियों को ही वे भरती कर सके। ये सौ आदमी भी गांधीजी और वल्लभ भाई के प्रभाव के कारण मिले, अन्यथा खेड़ा सत्याग्रह के प्रभाव और परिणामों के कारण इस क्षेत्र का सारा जन-मत सरकार विरोधी था। गांधीजी ने पूर्वघोषणा कर दी थी कि पहले दल के सेनापति के रूप में वे स्वयं और उप-सेनापति के रूप में वल्लभ भाई जाएगा। किन्तु इसीके साथ यह भी स्पष्ट कर दिया था कि यद्यपि युद्ध-क्षेत्र में वे सवसे आगे होंगे, किन्तु सर्वथा निरस्त्र रहेंगे। अतः भारत सरकार की सहायता करने की अपेक्षा गांधीजी द्वारा सरकार को दिए गए आश्वासन और नैतिक समर्थन की दृष्टि से ही लोग भरती हुए, यह मानना होगा। 9 नवम्बर, 1918 को जर्मनी द्वारा आत्मसमर्पण कर देने के कारण युद्ध वन्द हो गया। अतः गांधीजी और वल्लभ भाई सैनिक भरती के अपने दायित्व के मुक्त हो गए।

इन्हीं दिनों सर मांटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधारों के नाम पर नागरिक स्वतन्त्रता पर आघात करनेवाला जो रौलट एक्ट देश के सामने आया उसने सारे देश को हिला दिया। इस काले कानून के विरुद्ध महात्माजी ने फरवरी, 1919 में सत्याग्रह कार्यक्रम का उद्घोष कर दिया। गांधीजी के आह्वान पर सारे देश में एक तूफान उठ खड़ा हुआ। वम्बई, कलकत्ता, दिल्ली आदि में भारी हड़तालें हुई। 6 अप्रैल, 1919 को अहमदावाद में भी भारी हड़ताल हुई और वल्लभ भाई के नेतृत्व में एक विशाल जुलूस निकाला गया जो अहमदावाद के इतिहास में अपूर्व और अद्वितीय था। इसके वाद आम सभा हुई और सभा-समाप्ति के वाद वल्लभ भाई ने सरकार द्वारा जब्त पुस्तकों को स्वयं वेचकर कानून भंग किया।

7 अप्रैल से सरकार की अनुमति लिए बिना ही, जो प्रेस एक्ट के अनुसार आवश्यक होती है, वल्लभ भाई ने 'सत्याग्रह' पत्रिका निकाली। पत्रिका का सारा कार्य वे अपने घर पर ही करते थे। उधर दिल्ली में भीषण दंगा हो गया, जिसके कारण महात्माजी दिल्ली जा रहे थे कि उन्हें मार्ग में ही गिरफ्तार कर लिया गया। इससे जनता भड़क उठी और देश के अन्य भागों में भी दंगे होने लगे। अहमदाबाद में भी यह आग भड़की और 10 अप्रैल को भारी दंगा हो गया। यहां पुलिस थानों, कुछ सरकारी इमारतों आदि को जलाने के प्रयत्न भी किए गए। परिणामत. अन्य स्थानों के समान अहमदाबाद में भी मार्शल-ला (जंगी कानून) लागू कर दिया गया। उधर वल्लभ भाई के मकान पर पुलिस का सख्त पहरा बैठा दिया गया था जिसके कारण उन्हें अनेक असुविधाओं और कठिनाइयों के बीच से गुज़रना पड़ा, किन्तु वे बड़ी शान्ति और सहिष्णुतापूर्वक परिस्थिति का मुकाबला करते रहे। इसी दंगे के दौर में नडियाद इलाके में रेल-लाइन भी उखाड़ी गई थी, जिसके आरोप में कुछ निरपराध व्यक्तियों को पकड़ा गया था। वल्लभ भाई ने इन लोगों के बचाव में तन, मन और धन तीनों ही प्रकार से सहायता की। मुकदमा लड़ा, स्वयं अदालत में पैरवी की और उन्हें मुक्ति दिलाई। *वल्लभ भाई की वकालत का यह अंतिम मुकदमा था।*

यद्यपि गांधीजी को, जिन्हें दिल्ली जाते हुए मार्ग में पकड़ लिया गया था, बम्बई ले जाकर छोड़ दिया गया, तो भी लोग बेहद उत्तेजित हो चुके थे और जहां-तहां दंगे-फसाद बढ़ रहे थे। पंजाब में इन दंगों को दबाने के लिए लाहौर और अमृतसर में बेशुमार अत्याचार किए गए। इनमें भी अमृतसर के जलियांवाला बाग का जगत्प्रसिद्ध जो नृशंस हत्याकाण्ड हुआ, उसने सारे राष्ट्र की आत्मा और उसके स्वाभिमान को झकझोर दिया।

गांधीजी देश में हो रहे इस बर्बर हिंसाकाण्ड और उससे उत्पन्न परिस्थिति पर बेहद दु.खी थे और ब्रिटिश शासन की इस बर्बरता का सदा-सर्वदा के लिए अन्त करने को व्यग्र हो उठे थे। अतः इन्होंने सरकार के साथ अपने आगामी कदम के रूप में सर्वप्रथम 'असहयोग' कार्य-

क्रम की घोषणा की और तदनुसार उन्होंने 1 अगस्त को 'बोअर वार मेडल', 'जूल वार मेडल' और 'कैसरे-हिन्द' पदक, जो उन्हें ब्रिटिश साम्राज्य की सेवाओं के उपलक्ष्य में प्राप्त हुए थे, वाइसराय को लौटा-कर असहयोग का अपना कार्यक्रम आरम्भ किया। 11 जुलाई, 1920 को गुजरात राजनैतिक परिषद् की बैठक नडियाद में हुई। उसमें सर्वप्रथम वल्लभ भाई के प्रस्ताव पर सरकार से असहयोग करने का प्रस्ताव स्वीकार किया गया। इसी अवसर पर एक दूसरे प्रस्ताव द्वारा गुजरात विद्यापीठ की स्थापना करने का भी निर्णय किया गया, जिसकी स्थापना के साथ ही वल्लभ भाई ने उसका सदा पोषण भी किया।

कुछ दिनों बाद सितम्बर, 1920 में लाला लाजपतराय की अध्यक्षता में कांग्रेस का विशेष अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। इसमें असहयोग का प्रस्ताव पास किया गया। असहयोग के कार्यक्रम में जो बातें निश्चित की गई उनमें उपाधियों, सरकारी नौकरियों, कचहरियों, स्कूल, कालेजों और कौंसिलों तथा विदेशी वस्त्रों के बहिष्कार के साथ स्वदेशी भावना और खादी का प्रचार शामिल था। वल्लभ भाई ने उन्हीं दिनों खादी पहनना आरम्भ किया। कलकत्ता के इस अधिवेशन के बाद उसी वर्ष दिसम्बर मास में कांग्रेस का साधारण अधिवेशन नागपुर में हुआ और इसमें असहयोग का यह प्रस्ताव श्री जिन्ना को छोड़ सर्वमत से स्वीकार किया गया। यहां यह उल्लेखनीय है कि सर्वप्रथम गांधीजी ने असहयोग का कार्यक्रम जब देश के सामने रखा तो कांग्रेस के ही अनेक नेता इसके विरुद्ध थे : इनमें देशबन्धुदास, विपिनचन्द्र पाल, श्री जयकर, कायदे आज़म जिन्ना, पं० मदनमोहन मालवीय, श्रीमती बेसेण्ट आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कलकत्ता के विशेष अधिवेशन से ही वास्तव में गांधी-युग आरम्भ हुआ। इसके बाद नागपुर कांग्रेस में गांधीजी ने देश को जो कार्यक्रम दिए और असहयोग एवं सत्याग्रह के जो आन्दोलन हुए वे गांधीजी के बढ़ते हुए प्रभाव और लोकप्रियता के प्रमाण बने।

कलकत्ता के बाद नागपुर कांग्रेस ने देश की राजनीति को एक नया मोड़ दिया। नागपुर कांग्रेस में जो महत्त्वपूर्ण काम हुआ, वह था कांग्रेस के मुस्तकिल विधान का निर्माण। विधान का मसविदा गांधीजी ने स्वयं

तैयार किया था और यही स्वाधीनता-प्राप्ति तक कांग्रेस का सर्वोपरि साधन और संबल बना रहा। नागपुर के इसी अधिवेशन में कांग्रेस ने औपनिवेशिक स्वराज्य के लक्ष्य को बदलकर 'शान्तिमय युद्ध उपायों से स्वराज्य प्राप्त करना' अपना ध्येय घोषित किया। कांग्रेस ने अपने ध्येय से 'औपनिवेशिक' शब्द सर्वप्रथम यही निकाला। इस विधान के अनुसार गुजरात में जो प्रान्तीय समिति बनी उसके अध्यक्ष वल्लभ भाई चुने गए। कलकत्ता की कांग्रेस में ही गांधीजी ने घोषणा की कि असहयोग के प्रस्ताव में बताया गया सारा कार्यक्रम यदि लोग शान्तिपूर्वक पूरा कर दें, तो एक वर्ष में स्वराज्य स्थापित किया जा सकता है। नागपुर कांग्रेस के बाद 'एक साल में स्वराज्य' के नारे ने बड़ा जोर पकड़ा और लोगों में आश्चर्यजनक उत्साह एवं जोश दिखाई देने लगा। जनता को लगातार कार्यक्रम देने के उद्देश्य से नागपुर कांग्रेस के बाद महासमिति की जो बैठक हुई उसमें तय किया गया कि 30 जून, 1921 के पहले कांग्रेस के लिए तिलक स्वराज्य फंड में एक करोड़ रुपया जमा किया जाए, चार आने वाले एक करोड़ सदस्य बनाए जाए तथा देश में बीस लाख चरखे जारी किए जाए। इसमें गुजरात, काठियावाड़ के हिस्से में दस लाख रुपये एकत्रित करना, तीन लाख सदस्य बनाना और एक लाख चरखे चालू करना आया था। यद्यपि सब प्रान्तों के हिसाब से गुजरात को अनुपात तीन लाख रुपये एकत्रित करना होता, परन्तु चूंकि गुजरात लड़ाई का मोर्चा बनने जा रहा था, अतः जन-जागृति की दृष्टि से भी इसपर अधिक भार डाला गया। वल्लभ भाई ने गुजरात की ओर से गांधीजी को निश्चिन्त रहने के लिए कह दिया।

वल्लभ भाई इस नये दायित्व को पूरा करने के लिए अपने कार्यकर्ताओं के साथ गांव-गांव घूमने लगे। अनथक प्रयत्न और अपने प्रभाव के कारण बहुत जल्दी ही वल्लभ भाई ने दस के बजाए पन्द्रह लाख रुपये इकट्ठे कर लिए और सदस्यता एवं चरखों का लक्ष्य भी प्राप्त कर लिया। इसी समय 1 जून को पांचवीं गुजरात परिषद हुई। वल्लभ भाई इसके अध्यक्ष चुने गए।

असहयोग आन्दोलन के प्रवर्त्तकों द्वारा, जिनमें वल्लभ भाई भी एक

थे, कार्यक्रम को पूरा करने की घोषणा के साथ ही असहयोग की हवा बड़ी तेज़ी से चारों ओर फैलने लगी। 30 जून को एक करोड़ रुपये का 'तिलक स्वराज्य फंड' इकट्ठा करने का लक्ष्य पूरा हो गया। इसके बाद 30 सितम्बर से पहले विदेशी कपड़े का बहिष्कार करने का कार्यक्रम रखा गया, क्योंकि एक वर्ष में स्वराज्य स्थापित करने की बात लोगों के मन में थी और गांधीजी यह एक वर्ष कलकत्ता कांग्रेस के विशेष अधिवेशन से गिनते थे। अतः विदेशी वस्त्र-बहिष्कार के लिए 1 अगस्त यानी लोकमान्य तिलक की पहली बरसी के दिन सारे देश—नगरों में तथा गांव-गांव में—विदेशी वस्त्रों की होली जलाने का कार्यक्रम पूरा करने का निश्चय किया गया। इसमें बम्बई और अहमदाबाद की होलियां शायद सबसे बड़ी थीं। वल्लभ भाई ने अपने साथी बैरिस्टरों के चोगों के अलावा दर्जनों सूट, नेक-टाइयां, कालर और बूट (जूते) जलाए। लोगों में अपरिमित जोश था। होली शुरू होने पर अनेकों ने पहने हुए कपड़े अपने शरीर से उतार-उतारकर, विदेशी वस्त्रों की उसमें वर्षा-सी कर दी। इसके बाद विदेशी कपड़े की दुकानों और शराबखानों पर धरना शुरू हुआ। इसमें महिलाओं ने बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया। वल्लभ भाई ने स्वयं अपने अनेक सहयोगियों एवं स्वयंसेवकों के साथ अहमदाबाद की कपड़ा-मण्डी में विदेशी वस्त्रों की दुकानों पर धरना देने का कार्य आरम्भ किया। असहयोग के अन्य कार्यक्रम जैसे विदेशी शिक्षा का बहिष्कार आदि भी बड़े जोश और तेज़ी के साथ पूरे किए जा रहे थे। अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी ने भी, जिसमें यद्यपि कांग्रेसी सदस्यों का अल्पमत था किन्तु वल्लभ भाई के प्रयत्न एवं प्रभाव के कारण, सरकार से असहयोग किया। परिणामतः सरकार ने म्युनिसिपैलिटी को भंग कर दिया। इसपर अहमदाबाद के नागरिकों की ओर से तत्काल एक 'सार्वजनिक प्रारम्भिक शिक्षा मण्डल' की स्थापना की गई जिसके द्वारा बच्चों को आरम्भिक राष्ट्रीय शिक्षा देने के लिए व्यवस्था की गई। विदेशी शिक्षा के बहिष्कार के कारण सूरत और नडियाद को भी सरकार ने भंग कर दिया और वहां भी स्थानीय स्तर पर शिक्षा की व्यवस्था की गई।

असहयोग के कार्यक्रम को और तेजी से पूरा करने के लिए वल्लभ भाई ने अपने सैंकडों सहयोगियों के हस्ताक्षरो से एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया जिसमे उन्होंने कहा :

"हिन्दुस्तान की सार्वजनिक आकाक्षाओ को कुचल डालनेवालो, इन शासनतन्त्र मे कोई भी हिन्दुस्तानी असैनिक और खास तौर पर सैनिक की हैसियत से नौकरी करे, यह हिन्दुस्तान के राष्ट्रीय सम्मान को धक्का पहुंचानेवाली बात है। प्रत्येक भारतीय और सिपाही असैनिक मुलाजिम का यह फर्ज है कि वह सरकार से अपना सम्बन्ध तोड ले और अपने गुजारे का कोई भी उपाय ढूढ़ ले।"

इन्ही दिनो सितम्बर मास मे असहयोग के इस कार्यक्रम द्वारा सेना मे बद-अमनी फैलाने के अभियोग मे अलीबन्धुओं पर राजद्रोह का मुकदमा चलाकर सजा दे दी गई थी। इसपर गाधीजी ने स्पष्ट घोषणा की :

"गवर्नर महोदय को ज्ञात होना चाहिए कि मौजूदा सरकार के विरुद्ध अप्रीति फैलाना तो काग्रेस की प्रतिज्ञा बन चुकी है। जिसे कानून का रूप दे दिया गया है। उस ताकत पर स्थापित इस सरकार के खिलाफ अप्रीति फैलाने के लिए प्रत्येक असहयोगी कृतसंकल्प है। असहयोग असल मे धार्मिक और नैतिक आन्दोलन होने पर भी वर्तमान शासन-प्रणाली को जान-बूझकर उखाड़ देने का इच्छुक आन्दोलन है। और इसीलिए बेशक इडियन पीनल कोड की रूह से राजद्रोही प्रवृति है।"

गाधीजी और उनके असहयोग के इस कार्यक्रम से, जो इन दिनों समूचे देश में बड़ी तेजी से चल रहा था, वाइसराय और गवर्नर से लेकर कलेक्टर तथा अन्य गोरे अधिकारी बड़े तग आ गए थे। आन्दोलन को दबाने अथवा अभावी बनने के लिए जो भी कदम सरकारी अथवा गैर-सरकारी स्तर पर उठाए गए, उल्टे उनसे आन्दोलन और बढा और इस प्रकार पग-पग पर सरकार और अधिकारी वर्ग को मात खानी पड़ी। सरकार इस स्थिति से चिन्तित और परेशान थी। अन्त में वाइसराय को एक युक्ति सूझी। उसने युवराज को भारत बुलाने की योजना बनाई। इसमें सरकार की स्पष्ट माग थी भारतीय जनता अशिक्षित

और श्रद्धालु है, वह कुछ स्वभाव से ही राजा और राज-परिवार के प्रति एक प्रकार का भक्ति भाव रखती है। अतः युवराज को भारत बुलाकर सर्वत्र घुमाया जाए और उनसे भाषण कराए जाएं। इससे न केवल लोगों का ध्यान बटेगा अपितु असहयोग आन्दोलन से उन्हें विमुख किया जा सकेगा और इससे गांधीजी की लोकप्रियता में भी अनायास ही कमी हो जाएगी। इस प्रकार खयाली पुलाव पकाकर वाइसराय ने युवराज को भारत बुलाने का कार्यक्रम बन लिया।

एक ओर युवराज के भारत आगमन की घोषणा हुई, दूसरी ओर गांधीजी ने यह सुनते ही स्पष्ट ऐलान कर दिया कि व्यक्ति की हैसियत से राजा या युवराज के प्रति हमारे दिलों में अप्रीति नहीं है, परन्तु युवराज अभी ब्रिटिश साम्राज्य के एक प्रतिनिधि की हैसियत से यहां आ रहे हैं और साम्राज्य को मिटा देने के लिए सारे देश ने लड़ाई छेड़ दी है, अतः ऐसे समय उनके यहां न आने में ही उनकी शोभा है। इतने पर भी जनता की भावनाओं की परवाह न करके उन्हें बुलाया जाएगा, तो उनके सम्मान में होनेवाले तमाम समारोह और जुलूसों वगैरह का बहिष्कार करने की सलाह लोगों को मुझे देनी होगी। गांधीजी की इस चेतावनी की उपेक्षा हुई। युवराज हिन्दुस्तान आए। वे 17 नवम्बर को हिन्दुस्तान के किनारे बम्बई बन्दरगाह पर उतरे। इस दिन सारे देश में शोक मनाया गया और हड़तालें हुई। इसी बीच लोगों को उकसानेवाली कुछ घटनाओं के कारण बम्बई में दंगे हो गए। गांधीजी इस समय बम्बई में ही थे। उन्होंने इन दंगों के लिए खेद व्यक्त किया और शान्ति स्थापित होने तक के लिए अनशन शुरू कर दिया। गांधीजी के इस अनशन से शान्ति स्थापित हुई और उन्होंने 22 तारीख को अपना अनशन तोड़ दिया। एक वर्ष में स्वराज्य हासिल करने के अपने 'लक्ष्य के अनुसार यदि निश्चित अवधि में स्वराज्य न मिले तो गांधीजी अपने निश्चित क्षेत्र में सामूहिक सविनय भंग का आन्दोलन आरम्भ करनेवाले थे, किन्तु बम्बई के इन दंगों के कारण उन्हें अपना यह कार्यक्रम फिलहाल मुलतवी करना पड़ा और यह निश्चय किया गया कि सविनय अवज्ञा आन्दोलन कब छेड़ा जाए, इसका निर्णय दिसम्बर के अन्त में होने

वाली अहमदाबाद कांग्रेस में करेंगे।

इसी समय कांग्रेस ने लोगों पर नियंत्रण रख, उन्हें अनुशासित बनाए रखने के उद्देश्य से एक स्वयंसेवक-दल का गठन कर उन्हें संगठित करने का काम शुरू किया। इसे सरकार ने गैर-कानूनी करार दे दिया और खुल्लमखुल्ला अपना दमन-चक्र चला दिया। इसी सिलसिले में कांग्रेस के अखिल भारतीय नेतागण जिनमें देशबन्धुदास, पं० मोतीलाल नेहरू, लाला लाजपतराय, पुरुषोत्तमदास टण्डन, मौलाना अबुलकलाम आजाद, राजाजी, और पं० जवाहरलाल नेहरू आदि प्रमुख थे, को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया। इसके अतिरिक्त हजारों कांग्रेस कार्यकर्ताओं और स्वयंसेवकों को भी पकड़कर सींखचों के भीतर कर दिया। इससे लोगों में उत्तेजना बढ़ी और जहां-जहां युवराज गए, वहां-वहां उनका पूर्ण बहिष्कार हुआ। जहां उनका जुलूस निकलता, वहीं लोग मार्ग के दोनों ओर काले झण्डे तथा दूकानें बन्द रखते। इस प्रकार लाहौर, दिल्ली, इलाहाबाद, पटना और कलकत्ता में युवराज का पूर्ण बहिष्कार किया गया।

इन्हीं दिनों दिसम्बर, 1921 में कांग्रेस का अहमदाबाद अधिवेशन हुआ। वल्लभ भाई पटेल इसके स्वागताध्यक्ष थे। इस अधिवेशन की तैयारी साज-सज्जा और इसे सफल बनाने में वल्लभ भाई ने दिन-रात परिश्रम किया था। अहमदाबाद कांग्रेस के मनोनीत अध्यक्ष श्री देशबन्धुदास को कलकत्ता में गिरफ्तार कर लिया गया। अतः वर्तमान अधिवेशन हकीम अजमल खां की अध्यक्षता में हुआ। अधिवेशन के लिए देशबन्धुदास ने अपना लिखित भाषण भेज दिया था।

वल्लभ भाई ने स्वागताध्यक्ष की हैसियत से इस अधिवेशन में जो संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित भाषण दिया, वह मननीय है। उन्होंने कहा :

"हमें उम्मीद थी कि हम स्वराज्य की स्थापना का जलसा मनाने के लिए जमा होंगे, और इसीलिए ऐसे अवसर को शोभा देनेवाले ढंग का बनाने का हमने प्रयत्न किया है। यह शुभ अवसर मनाना संभव नहीं हुआ। दयानिधि परमात्मा ने हमारी परीक्षा लेने और ऐसे महंगे दाम के योग्य बनाने के वास्ते हमारे लिए कष्ट भेजा है। कैद, शारीरिक हमले,

जबरदस्ती तलाशी और हमारे कार्यालयों और पाठशालाओं के ताले तोड़ने आदि की तमाम घटनाओं के पास आनेवाले स्वराज्य के स्पष्ट चिह्न समझकर तथा हमारे मुसलमान भाइयों और साथ ही पंजाबियों को लगे हुए ज़ख्मों पर ठंडा मरहम समझकर आपके स्वागत के लिए की गई हमारी सजावट में, संगीत के जलसों में या दूसरे आनन्द के कार्यक्रम में हमने किसी प्रकार की तबदीली या कमी नहीं की है।"

कांग्रेस के इस अधिवेशन में मुख्य प्रस्ताव सामूहिक सविनय कानून-भंग-सम्बन्धी था। प्रस्ताव स्वयं गांधीजी ने उपस्थित किया और वल्लभ भाई ने उसका समर्थन किया। प्रस्ताव यद्यपि विस्तृत था, किन्तु इसमें कहा गया था कि किसी भी सत्ता का स्वेच्छाचारी, अन्यायी और पौरुष हनन करनेवाला उद्योग रोकने के लिए दूसरे तमाम उपाय आज़मा लेने के बाद हथियारबन्द बलवे के एवज़ में सविनय कानून-भंग ही एकमात्र सुधरा हुआ और कारगर उपाय है। इसलिए मौजूदा सरकार को हिन्दुस्तान के लोगों के प्रति केवल गैरज़िम्मेदार स्थान से उतार देने के लिए लोग व्यक्तिगत और जहां इसके लिए पूरी तैयारी हो वहां सामूहिक सविनय अवज्ञा का भी आश्रय लें। यह उचित सावधानी रखकर और कार्य-समिति या अपनी प्रान्तीय समिति समय-समय पर जो सूचनाएं जारी करे उनके अनुसार आरम्भ किया जाए। इसको क्रियान्वित करने के लिए गांधीजी को कांग्रेस का सर्वाधिकारी नियुक्त किया गया।

गांधीजी ने यह प्रस्ताव उपस्थित करते हुए जो संक्षिप्त किन्तु भव्य, प्रेरक और हमारे मर्मबिन्दु को छू लेनेवाला भाषण दिया, उसके निम्नलिखित वाक्यों से उनके मन की तीव्र वेदना का आभास मिल जाता है :

"इस प्रस्ताव में हम उद्धत होकर युद्ध नहीं मांग रहे हैं। परन्तु जो सत्ता उद्धतता पर आरूढ़ है उसे चुनौती ज़रूर दे रहे हैं। जो सत्ता अपनी रक्षा के लिए वाणी का और संस्थाएं बनाने का स्वातन्त्र्य कुचल डालना चाहती है—जनता के इन दो फेफड़ों को दबाकर उसे प्राणवायु से वंचित करती है—उसे मैं आपकी तरफ से नम्र, किन्तु अटल चुनौती देता हूं कि या तो वह नेस्तनाबूत हो जाएगी या इस महान कार्य को करते हुए जब तक हिन्दुस्तान का प्रत्येक नर-नारी इस पृथ्वी-तल पर से नष्ट नहीं

हो जाएगा, तब तक चैन से नहीं बैठेगा...।"

"इस प्रस्ताव में दृढ़ता, नम्रता और निश्चय तीनों मौजूद हैं। अगर मैं समझौते की बातचीत में भाग लेने की सलाह दे सकता तो जरूर देता। मेरा ईश्वर ही जानता है कि समझौता और शान्ति मुझे कितने प्रिय हैं। परन्तु मैं किसी भी कीमत पर उन्हें प्राप्त नहीं करना चाहता। स्वाभिमान खोकर मैं समझौता नहीं चाहता। पत्थर की सी शान्ति मैं नहीं मांगता। मुझे श्मशान की शान्ति नहीं चाहिए। सारी दुनिया की बाण-वर्षा के सामने छाती खोलकर एकमात्र ईश्वर के सहारे घूमनेवाले मनुष्य के हृदय में निवास करनेवाली शान्ति की मुझे जरूरत है।"

अहमदाबाद कांग्रेस में एक अन्य प्रस्ताव द्वारा सामूहिक करबन्दी सत्याग्रह के लिए बारडोली तालुका चुना गया। कांग्रेस अधिवेशन की समाप्ति के साथ ही बारडोली के सत्याग्रह की तैयारी भी बड़े जोर-शोर के साथ शुरू हो गई। 1 फरवरी, 1922 को महात्मा गांधी ने वाइसराय को पत्र लिखकर बारडोली के करबन्दी आन्दोलन की सूचना भी भेज दी। इसी समय 8 फरवरी, 1922 को एक दुर्घटना हो गई। उत्तर प्रदेश में गोरखपुर के निकट चौरी-चौरा नामक स्थान पर कांग्रेस के जुलूस की भीड़ ने पुलिस के 21 सिपाहियों को, थानेदार को थाने में खदेड़कर उसमें आग लगा दी जिससे वह सब वहीं जल मरे। इस दुर्घटना से गांधीजी के मन को सख्त चोट लगी। उधर प्रिंस आफ वेल्स के भारत-भ्रमण के समय पिछले दिनों बम्बई और मद्रास में जो दंगे हुए थे, वे भी गांधीजी के मन को कचोट रहे थे। देश में बढ़ती हुई यह हिंसक प्रवृत्ति जो यद्यपि अंग्रेजी राज्य के प्रति जनता की अप्रीति और अरुचि ही नहीं, एक प्रकार की बढ़ती हुई घृणा का स्पष्ट आभास थी, गांधीजी के विचारों और उनके सत्य और अहिंसापूर्ण उपायों से सविनय अवज्ञा आन्दोलन की सफलता पर एक गम्भीर आघात भी थी। अतः उन्होंने निष्कर्ष रूप में यह माना कि भारतीय जनता अभी अहिंसा के लिए तैयार नहीं है, बारडोली के सविनय अवज्ञा आन्दोलन को स्थगित करने की घोषणा कर दी।

चौरी-चौरा हत्याकाण्ड के फलस्वरूप सत्याग्रह स्थगित करने की इस घोषणा से देश के अनेक चोटी के नेताओं को बड़ी निराशा हुई। इनमें

लाला लाजपतराय और पं० मोतीलाल नेहरू को, जो जेल में थे, गांधीजी के इस निर्णय से बड़ा आघात लगा। और उन्होंने गांधीजी को अपनी असहमति का पत्र भी लिखा। विट्ठल भाई भी जो बारडोली के सत्याग्रह के लिए आरम्भ से ही अनुरागपूर्वक काम कर रहे थे, गांधीजी का वह निर्णय उचित नहीं जान पड़ा। चोटी के नेताओं में केवल वल्लभ भाई और राजेन्द्र बाबू ही उस वक्त दो ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने बिना नुक्ताचीनी किए अथवा निराशा के भाव चेहरे पर बिना लाए अपनी पूर्ण श्रद्धा के साथ गांधीजी का निर्णय शिरोधार्य किया था।

सचमुच ही, सत्याग्रह की लड़ाई स्थगित करने से नेताओं, कार्यकर्ताओं और जनता का वह जोश और रोष, जो सरकार के विरुद्ध सारे देश में एक तूफान का रूप ग्रहण कर चुका था, एकबारगी ठण्डा पड़ गया। नेताओं और जनता में फैले इस असन्तोष और निराशा को देखकर सरकार की बन आई और उसने मुश्किल से आए इस अवसर को हाथ से न जाने देने का निश्चय किया। इस समय लार्ड बर्कनहेड ने भारत को लक्ष्य कर ब्रिटिश संसद् में भाषण करते हुए कहा : "ब्रिटिश जाति अभी तक ज्यों की त्यों मजबूत है। सबको याद रहे कि उसके हाथ-पैर साबुत हैं।" भारत को जल्दी ही जिम्मेदार हुकूमत देने की बात करनेवाले माण्टेग्यू साहब भी इस अवसर पर चुप न रह सके और अंग्रेज जाति का गौरव-बखान करते हुए वे बोले :

"अगर कोई हमारी सल्तनत के खिलाफ ही उठेंगे, अगर कोई हिन्दुस्तान के प्रति अपनी जिम्मेदारी पूरी करने में ब्रिटिश सरकार को रोकने के लिए सामने आएंगे और अगर कोई इस भ्रम में पड़कर कि हम उसके कहने से ही हिन्दुस्तान से चले जाएंगे, मनमानी मांग करेंगे, तो ऐसा करनेवाले धोखा खाएंगे, दुनिया की सबसे अधिक दृढ़निश्चयी ब्रिटिश जाति को ललकारकर वे फायदा नहीं उठाएंगे। उन्हें ठिकाने लगाने के लिए ब्रिटिश जाति फिर एक बार अपना समस्त पौरुष और दृढ़निश्चयीपन दिखा देगी।"

लार्ड बर्कनहेड और मि० माण्टेग्यू साहब का उक्त मन्तव्य स्पष्टतः गांधीजी द्वारा वाइसराय को लिखे उस पत्र का जवाब था जिसमें उन्होंने

ब्रिटिश साम्राज्य को चुनौती दी थी। इसका गांधीजी ने पुन: तारीख 23-2-22 के 'यंग इण्डिया' में करारा जवाब दिया :

"लार्ड वर्कनहेड और मि० माण्टेग्यू दोनों को पता नहीं है कि समुद्र पार से जितने साबुत हाथ-पैरों वाले लाकर उतारे जा सकते हों, उन सबका सामना करने को हिन्दुस्तान आज भी तैयार है, और वह ब्रिटिश जाति को चुनौती तो आज नहीं परन्तु उसी दिन दे चुका है जब 1920 की कलकत्ता कांग्रेस ने भारतीयों का यह निश्चय घोषित किया था कि खिलाफत, पंजाब और साम्राज्य की विविध मांग को पूरा किए बिना वे चैन से नहीं बैठेंगे। इसमें साम्राज्य की हस्ती की चुनौती जरूर है और ब्रिटिश साम्राज्य के मौजूदा शासक अगर भलमनसाहत के साथ इस साम्राज्य को (बराबरी के हक वाले हिस्सेदार मित्रों और ऐसी जातियों के साम्राज्य को, जो जब जी में आए तब शरीफों की तरह एक-दूसरे से अलग होने की सत्ता व स्वतन्त्रता रखते हों) राष्ट्रसंघ में बदल देने को तैयार न होंगे, तो यह भी निश्चय समझ लेना चाहिए कि, दुनिया की सबसे अधिक दृढ़निश्चयी जाति का यह सारा पौरुष और दृढ़निश्चयीपन और ये तमाम साबुत हाथ-पैर हिन्दुस्तान की अटल और अचल टेक को मिटाने में असफल होंगे।...और अगर भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा अपनाए हुए इस अभिश्रान्त यज्ञ में चौरीचौरा की हत्यारी घटना ने विघ्न न डाला होता, तो वह ब्रिटिश सिंह भी जी भरकर देख लेता कि उसके सामने हिन्दुस्तान अत्यन्त शुद्ध तरोताजा शिकारी के कितने ढेर लगा सकता है। परन्तु भगवान को यह मंजूर नहीं था।

"फिर भी अभी समय नहीं चला गया। डाउनिंग स्ट्रीट और ह्वाइट हॉल के शासकों को नाउम्मीद होने की जरा भी जरूरत नहीं। उन्हें अपना पौरुष पूरी तरह आजमा लेने के रास्ते खुले हैं।"

इस प्रकार गांधीजी और सरकार में बहुत साफ-साफ बातें हो गईं। परिणामत: 10 मार्च को रात के दस बजे साबरमती आश्रम में गांधीजी को गिरफ्तार कर लिया गया। 18 मार्च को उनपर मुकदमा चलाया गया और यंग इण्डिया में लिखे उनके लेखों को राजद्रोही मानकर लेखक की हैसियत से उन्हें छः वर्ष की सादी कैद तथा छापनेवाले की हैसियत

से श्री शंकरलाल बैंकर को एक वर्ष की कैद और एक हज़ार रुपये जुर्माने की सज़ा दी गई। अपने ऊपर लगाए अभियोग को स्वीकार करते हुए गांधीजी ने अदालत के सामने अपना लिखित बयान पढ़ा। गांधीजी का यह बयान क्या था, भारतीय आत्मा का एक शब्द चित्र था। सारा भारत अपना अभियोग-पत्र लेकर आज अदालत में उपस्थित हुआ और प्रजाद्रोह के अपराध से पीड़ित ब्रिटिश साम्राज्य का प्रतिनिधि मजिस्ट्रेट ब्रूमफील्ड (न्यायाधीश) निर्णय और न्याय के संघर्ष में आत्मसमर्पण कर बैठा।

हुआ भी यही। जैसाकि ऊपर कहा गया है, न्यायाधीश ने निर्णय और न्याय के संघर्ष में ऊपर लिखा निर्णय तो दे दिया किन्तु इस निर्णय में सज़ा सुनाते हुए उसने अपने हृदय के भावों को जिन शब्दों में व्यक्त किया उन्हें देखिए :

"कानून मनुष्य के व्यक्तित्व पर ध्यान नहीं देता। परन्तु मैंने आज तक जिनके मुकदमे सुने या भविष्य में सुनने होंगे, उन सबसे आप भिन्न कोटि के ही पुरुष हैं। आपके करोड़ों देशवासी आपको पूज्य मानते हैं, और राजनैतिक मामलों में आपसे मतभेद रखनेवाले भी आपको उच्च आदर्श वाले सन्त पुरुष मानते हैं, यह बात मैं भूल नहीं सकता। परन्तु इस समय मेरा फर्ज़ तो आपका विचार एक ऐसे कानून के अधीन मनुष्य के तौर पर ही करना है, जिसने अपना अपराध स्वीकार कर लिया है। इसलिए बारह वर्ष पहले इसी धारा के अनुसार श्री बालगंगाधर तिलक को जो छः वर्ष की सादी कैद की सज़ा दी गई थी, उतनी ही सज़ा आपको उनकी पंक्ति में मानकर आपको भी देता हूं। हां, साथ ही इतना कह देना चाहता हूं कि भविष्य में परिस्थिति बदलने पर सरकार आपको जल्दी छोड़ देगी, तो मेरे बराबर आनन्द और किसीको नहीं हो सकता।"

गांधीजी ने जज को इस सद्भाव पर तथा उन्हें लोकमान्य तिलक की कोटि में गिनने के लिए धन्यवाद दिया। अदालत में इस कार्यवाही के दौरान डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, श्रीमती सरोजनी नायडू, सेठ जमनालाल बजाज तथा गुजरात के अनेक नेता और कार्यकर्ता उपस्थित थे। वे सभी गांधीजी की सज़ा का निर्णय सुनकर सिसक-सिसककर रो पड़े। इस

समय मात्र वल्लभ भाई ऐसे थे जिन्होंने न केवल अपने को संयत रखा वरन् औरों को भी धीरज बधाया। गांधीजी ने हसते-हंसते सबके योग्य एक प्रेमपूर्ण वाक्य "मेरे हाथ में खादी रख दो और मुझसे स्वराज्य ले लो" कहकर विदा ली। पुलिस सुपरिंटेंडेंट उन्हें साबरमती जेल ले गया।

स्वातन्त्र्य-संग्राम के सेनानी

जैसाकि ऊपर उल्लेख हुआ है, राष्ट्रीय स्वातन्त्र्य आन्दोलन के सविनय अवज्ञा आन्दोलन का श्रीगणेश बारडोली से होना निश्चित था और इसीलिए इस पूरे आन्दोलन का केन्द्रबिन्दु भी यही था। लगभग एक वर्ष वल्लभ भाई और उनके सहकर्मियों ने बड़ी निष्ठा और लगन से दिन-रात काम करके लोगों को इसके लिए तैयार किया था। इस तैयारी की हवा सारे देश में फैल चुकी थी और लोगों में कार्यक्रम के प्रति उत्साहपूर्ण बेचैनी थी। इसी बीच चौरीचौरा हत्याकाण्ड का एक झटका लगा जिसने बारडोली और इस क्षेत्र के लोगों को हतोत्साहित कर दिया। उन दिनों जो एक चेतना लोगों के चेहरों पर दिखाई देती थी, आजादी की एक नई हवा, एक नई फिज़ा समग्र देश में फैली हुई थी, सविनय अवज्ञा आन्दोलन के स्थगित होने से एक मायूस स्थिति में मचल-मचलकर लोगों के दिलों में समा गई। लोगों के दिलों की बढ़ती हुई आग पर पानी पड गया। एकबारगी जान पड़ा, मानो स्वराज्य की लहलहाती खड़ी फसल पर पाला पड गया। देश के चोटी के नेता जेल में थे फिर स्वराज्य और सत्याग्रह के सेनापति एवं सूत्रधार गांधीजी के कारावास और इस लम्बी सजा से सारे देश की हवा ही बदल गई।

किन्तु, विचार से देखें तो विधि के संयोग बड़े विचित्र होते हैं। एक सामान्य नियम है कि सेनापति की अनुपस्थिति में उसके कर्तव्य-कर्म का दायित्व उप सेनापति पर होता है। खेड़ा सत्याग्रह के दिनों में जब उसके सेनापति गांधीजी थे, वल्लभ भाई को उन्होंने अपना उपसेनापति बनाया था। सत्याग्रह की सफलता पर गांधीजी ने वल्लभ भाई के सम्बन्ध में

कुछ शब्द कहे थे, जिनका पिछले पृष्ठों में उल्लेख हो चुका है। सत्याग्रह की लड़ाई का श्रीगणेश वास्तव में गुजरात से ही हुआ और नेतृत्व की दृष्टि से सर्वप्रथम गांधीजी ने गुजरात से ही अपने उपसेनापति के रूप में वल्लभ भाई को चुना, विधि का यह एक विचित्र संयोग नहीं तो और क्या है ? गांधीजी इन दिनों जेल में थे और देश के अन्य चोटी के नेता भी। किन्तु वल्लभ भाई जिन्हें गांधीजी ने अपना उपसेनापति वनाया था, अनायास ही वाहर रह गए थे। अतः स्वाभाविक रूप से गांधीजी की अनुपस्थिति में लोक-चेतना का दायित्व उनके सिर आ पड़ा।

गांधीजी के जेल जाते ही देश की हवा वदली। कार्यकर्ताओं और नेताओं में निराशा तो थी ही, आलस्य और अकर्मण्यता का तम भी लोगों के दिलों में भरने लगा। किन्तु इस वदली हुई परिस्थिति में अपने देश और दायित्वों के प्रति वल्लभ भाई पूर्णतया सजग से थे। उन्होंने गांधीजी की गिरफ्तारी के वाद दूसरे ही दिन गुजरात के नाम अपना एक सन्देश प्रसारित करते हुए कहा :

"ब्रिटिश सिंह को आज तक हिन्दुस्तान ने अनेक शिकार भेंट किए हैं, किन्तु ऐसा पवित्र शिकार मिलने का सौभाग्य तो उसे यह पहला ही है। इसे पचाना कोई आसान वात नहीं है। अप्रैल, सन् 1919 में पहली वार उसने इस शिकार के लिए अपना पंजा फैलाया था, परन्तु जैसे फैलाया वैसे ही छोड़ देना पड़ा था। इस वार तो हमने सिंह को अच्छी तरह छेड़ा है। उसकी आंखें गुस्से से विकराल हैं। कुछ दिन से वह अपने अयाल को फड़फड़ा रहा है। परन्तु हिन्दुस्तान के ऋषि-मुनियों ने अपने तपोवल से सैकड़ों विकराल सिंहों को भेड़ों से भी हीन वना दिया है। इसी तरफ यह सिंह भी जल्दी या देर से इस महापुरुष के तपोवल के सामने वकरी वनकर रहेगा, इसमें सन्देह नहीं है।

"गुजरात के सिर पर भारी जिम्मेदारी है। हमारी परीक्षा का समय अव शुरू हुआ है। इस समय हमारा क्या धर्म है, यह गांधीजी ने स्वयं साफ तौर पर वता दिया है। उनके प्रति हमारी भावना वता देने का सही तरीका उनके नाम की 'जय' वोलना या उनके दर्शनों के लिए भाग-दौड़ करना नहीं, अपितु उनके वनाए हुए चतुर्दिक् सार्वजनिक कार्य-

क्रम को पूरा करके दिखाना है ।

"सारा हिन्दुस्तान भले ही उन्हें जल्दी न पहचान सके परन्तु गुजरात को तो, जहा उन्होंने प्रत्यक्ष अपना जीवन उंड़ेला है, उनके कांच जैसे पारदर्शी हृदय के उद्गार निकलने से पहले ही अंगीकार कर लेने चाहिए और उन्हे मूर्त्तरूप देने की योग्यता साबित कर दिखाना चाहिए।

इन्ही दिनो वल्लभ भाई ने 'नव-जीवन मे श्रद्धा की परीक्षा' शीर्षक मे एक लेख लिखा जिसमे उन्होने गाधीजी के प्रति क्या कर्तव्य है, यह बताया ·

"लोग कहते हैं—गाधीजी गए, अब उनके साथी क्या करेंगे ? उनमे ऐसा कोई चरित्रवान या शक्तिशाली व्यक्ति नहीं है जो उनकी नाव को आगे बढ़ा सके । यह बात बिलकुल सच है । उनके साथी भूलों से भरे हुए हैं । उनमे और उनके साथियो मे जमीन-आसमान का अन्तर है । उनके साथियों की त्रुटियां भी बेशुमार हैं, और इन साथियो की अपूर्णता के कारण ही गाधीजी को कारावास सहना पडा है। साथियों की वाणी में मिठास नहीं है और सयम तथा सहनशीलता की कमी है । ऐसी बहुत-सी त्रुटियो का उनमे से प्रत्येक को पूरी तरह भान है।

"परन्तु जैसे एक इमारत को बनानेवाला उसके प्लान बनानेवाले इंजीनियर के बराबर शक्ति रखने का दावा नही कर सकता किन्तु फिर भी वह प्लान के अनुसार इमारत को पूरी करने मे कठिनाई नही पाता, उसी प्रकार गांधीजी के साथी उनकी तैयार की हुई स्वराज्य की इमारत का प्लान यदि भली भाति समझ गए हैं, तो उस प्लान के मुताबिक इमारत का काम आगे बढाने मे घबराएगे नही । हम जानते हैं, हमारी मुश्किलें बेशुमार हैं, हमारी त्रुटियो को ढकनेवाला भी अब कोई नही रहा किन्तु लोगो का गाधीजी के प्रति प्रेम और उनके जेल जाने से स्वराज्य की जागरित हुई भावना हमारी सबसे बड़ी पूजी है । गाधीजी की अहिंसावृत्ति, उनकी ममता, उनका प्रेम, उनकी स्वराज्य की लगन और उनका अथक परिश्रम आखो के सामने रखकर हम दिन-रात मेहनत करेंगे और गाधीजी के बनाए हुए मार्ग पर चलकर हम उनके नाम और अपनी वफादारी को उज्ज्वल करेंगे, इसमे सन्देह नहीं ।"

वल्लभ भाई के इन विचारों और वाणी ने अपने साथियों में उत्साह भरा तथा गुजरात जागरित बनाए रखा, इतना ही नहीं, एक नई हवा पैदा की। उनके इन विचारों से ज्ञात होता है जैसाकि अपने उक्त कथन के अंतिम वाक्य में गांधीजी के 'नाम' और अपनी 'वफादारी' शब्दों का प्रयोग उन्होंने किया, कि वे उनके किस कोटि के अनुयायी हैं और कुछ समय पूर्व गांधीजी द्वारा सौंपा गया उप-सेनापति का पद और दायित्व उनकी गैरहाजिरी में उन्होंने एक सेनापति के रूप में किस सचाई, संजीदगी और खूबी से संभाल लिया है।

गांधीजी के जेल जाने के कुछ समय बाद ही कांग्रेस में अपरिवर्तन-वादी और परिवर्तनवादी दो दल बनाने के प्रयत्न आरम्भ हो गए। पण्डित मोतीलाल नेहरू और देशबन्धुदास इन दिनों जेल से छूटकर बाहर आए थे। देश के तमाम नेताओं में, जो इन दिनों बाहर थे, धारा-सभाओं के बहिष्कार के प्रश्न पर मतभेद था। इनमें जो धारासभा-प्रवेश के पक्ष में थे उनका, जिनमें श्री विट्ठल भाई पटेल भी एक थे, स्पष्ट विचार था कि धारासभाओं में जाकर वहां सरकार के अच्छे-बुरे सभी कामों का विरोध करके उसका काम करना असम्भव बना दिया जाए। इनमें भी देशबन्धुदास तो सन् 1920 से ही धारासभा-प्रवेश के पक्ष में थे। इन दिनों लखनऊ की महासमिति द्वारा सविनय भंग जांच समिति देश का दौरा कर रही थी। विट्ठल भाई, जो इसके सदस्य थे, इस दौरे में धारासभा-प्रवेश के लिए लोकमत तैयार कर रहे थे। उन्होंने पं० मोती-लाल जी को भी इस समिति का सदस्य बना लिया। इस समिति ने 5-11-22 को अपनी रिपोर्ट दी, जिसमें बताया गया : "देश बड़े पैमाने पर सामूहिक सविनय भंग के लिए अभी तैयार नहीं है।" साथ ही यह भी कहा : "देश के किसी हिस्से में कोई विशेष कानून तोड़ने अथवा कर देने से मनाही करने की जरूरत हो और लोगों की इसके लिए तैयारी हो, तो ऐसे सामूहिक सविनय भंग की स्वीकृति अपनी जिम्मेदारी पर देने का अधिकार प्रान्तीय समितियों को दिया जाए।" देशबन्धुदास, जो गया कांग्रेस के सभापति मनोनीत हुए थे, इस समिति के सदस्य नहीं थे और उनसे अपेक्षा थी कि वे कांग्रेस अध्यक्ष के नाते धारासभा-प्रवेश

के प्रश्न पर तटस्थ रहेंगे, किन्तु वह चुप न रह सके और उन्होंने एक सार्वजनिक वक्तव्य देकर धारासभा-प्रवेश के पक्ष में अपनी राय जाहिर कर दी।

स्मरण रहे, धारासभा-प्रवेश के पक्ष में इन दिनों एक जोरदार आन्दोलन चल रहा था और परिवर्तनवादियों में एक ओर इसके पक्ष में थी देशबन्धुदास, हकीम अजमल खां, पण्डित मोतीलाल नेहरू और विट्ठल भाई पटेल आदि थे तो दूसरी ओर अपरिवर्तनवादियों में राजगोपालचार्य, डाक्टर अन्सारी, श्री कस्तूरी रंग आयंगर, डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद आदि इसके विपक्ष में थे। दोनों ओर से इस सम्बन्ध में बड़ी खींचातानी और वाद-विवाद हुआ और संघर्ष बढ़ता ही गया। गया कांग्रेस में सभापति की हैसियत से देशबन्धुदास ने धारासभा-प्रवेश के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए इसकी जोरदार हिमायत की। इसपर वल्लभ भाई ने धारासभा-प्रवेश का विरोध करते हुए जो भाषण दिया उसका कुछ अंश यहां उद्धृत करना उपयुक्त होगा। उन्होंने कहा :

"मैं कोई नेता नहीं, मैं तो एक सिपाही हूं। किसान का बेटा हूं और यह मानने को तैयार नहीं कि जबान के जोर से स्वराज्य मिल जाएगा। हम बदमाशी में सरकार की बराबरी नहीं कर सकते।...हम अगर धारासभाओं की हलचल में पड़ जाएंगे तो लोग अधिक ठंडे पड़ जाएंगे और कांग्रेस जनता का विश्वास खो बैठेगी। धारासभाओं का आन्दोलन कांग्रेस के लिए विनाशकारी बन जाएगा। कांग्रेस ने जब से असहयोग की घोषणा की है, तब से उसमें किसान आए, मजदूर आए और स्त्रियां भाग लेने लगी हैं, क्योंकि उसमें उनके लिए काम करने और कुछ त्याग करने की गुंजाइश है।...धारासभाओं का आन्दोलन सौ वर्ष तक चलाए तो भी स्वराज्य नहीं मिलेगा।"

अन्त में राजाजी ने धारासभा-बहिष्कार के सम्बन्ध में एक प्रस्ताव पेश किया जो बहुमत से पास हो गया। देशबन्धुदास आरम्भ से ही धारासभा-प्रवेश के पक्षपाती थे, इसमें उन्हें निराशा हुई। अत: उन्होंने कांग्रेस अधिवेशन समाप्त होते ही अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। इतना ही नहीं, उन्होंने धारासभाप्रवेश का समर्थक 'स्वराज्य दल' नाम एक

नया दल भी संगठित कर लिया जिसके वे स्वयं अध्यक्ष बने और पं० मोतीलाल नेहरू मन्त्री नियुक्त हुए। अब कांग्रेस में इस प्रकार स्पष्ट दो दल हो गए थे। 25 मई को बम्बई में कांग्रेस महासमिति की बैठक हुई। इन्हीं दिनों जवाहरलाल जी जेल से छूटकर बाहर आए थे। उनका दृष्टि-कोण यद्यपि अपरिवर्तनवादी था, किन्तु फिर भी उन्हें कांग्रेस के अन्दर बढ़ता हुआ यह संघर्ष अप्रिय था और वे चाहते थे कि किसी प्रकार दोनों दलों में समझौता हो जाए। उनके साथ डाक्टर अन्सारी और श्रीमती सरोजनी नायडू भी समझौते के पक्षपाती थे। इसके साथ कुछ प्रान्तीय समितियों की भी राय थी कि विवाद को बढ़ने से रोका जाए। इसलिए श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने प्रस्ताव रखा कि "गया कांग्रेस के आदेशानुसार चुनावों के विरुद्ध प्रचार करना बन्द किया जाए" जवाहरलालजी ने इसका समर्थन किया। इसपर आपत्ति उठाई गई कि प्रस्ताव अनियमित है, क्योंकि कांग्रेस अधिवेशन में पास हुए प्रस्ताव को उलट देनेवाला प्रस्ताव महासमिति नहीं कर सकती। अन्ततोगत्वा यह कहकर कि गया कांग्रेस का प्रस्ताव तो कायम ही है, महासमिति के प्रस्ताव द्वारा केवल उसका प्रचार ही बन्द किया जा रहा है, उसे नियमित मान लिया गया। इसपर कुछ अधिक मतों से प्रस्ताव पास हो गया। प्रस्ताव के पास होते ही गया में चुनी हुई कार्यसमिति के सदस्यों ने जिनमें वल्लभ भाई तथा उनके कट्टर अपरिवर्तनवादी साथी थे, त्यागपत्र दे दिए।

इसके बाद दास बाबू बम्बई से मद्रास के दौरे पर गए। वहां उन्होंने एक सार्वजनिक भाषण में लार्ड रीडिंग के साथ समझौते की बात का संकेत कर गांधीजी पर आक्षेप लगाते हुए कहा :

"उस समय सरकार सत्याग्रह से दब गई थी तथा उसने झुककर समझौता करने की इच्छा ज़ाहिर की थी, मैं जेल में था। वहां मेरे पास शर्तें भेजी गई थीं। मैंने उन्हें प्रधान केन्द्र गांधीजी के पास भेज दिया था। परन्तु उन्होंने सब गड़बड़ कर दी और हमसे चरखा चलाने को कहा जाता है।"

यद्यपि सभी जानते हैं कि इन शर्तों में कोई तथ्य नहीं था और सच बात तो यह थी कि गांधीजी ने उन्हें लार्ड रीडिंग के जाल में फंसने से

बचा लिया था । अतः गांधीजी पर दास बाबू का यह आक्षेप पढ़कर वल्लभ भाई को बर्दाश्त नहीं हुआ और उन्होंने दास बाबू के आक्षेप पर निर्भीक और कड़ी टीका करते हुए कहा :

"जेल से छूटने के आठ माह बाद आज यह कहने का क्या अर्थ है कि वाइसराय ने समझौते की जो शर्तें पेश की थी, उन्हें न मानकर गांधीजी ने गड़बड़ कर दी ? आश्चर्य की बात तो यह है कि श्री विट्ठल भाई जैसे दास बाबू के अनुयायी को इसका अर्थ समझना बहुत कठिन हो रहा है। दास बाबू जब से जेल से लौटे है, लोकमत को अपने विचारों की ओर घसीटने के लिए लोग जितना महत कर सकें उतने कोड़े विरोधी दल को वे लगाते रहे हैं। जेल से छूटने के बाद कुछ दिन मौन धारण कर धार्मिक और मार्मिक व्याख्यान देना आरम्भ किया। लोगों को सन्देह हुआ कि श्री अरविन्द घोष की भांति वे कहीं एकान्त में न जा बैठे। किन्तु, समय पाते ही सविनय भग समिति के सदस्यो से भी विट्ठल भाई और उनके साथियों ने जो बात आरम्भ की थी उसका समर्थन किया। कलकत्ता की महासमिति की बैठक मे जितनी रस्साकशी हो सकती थी उतनी करके स्थिति अनिश्चित रखी। गया कांग्रेस में पूरा जोर लगाया, फिर भी जब प्रतिनिधियों ने चलने न दिया तो उग्र रूप धारण कर अध्यक्ष पद से कांग्रेस के प्रस्ताव पर प्रहार किए। इतने मे ही संतोष न हुआ तो अध्यक्ष पद से त्याग पत्र दे दिया और महासमिति की बैठक को अधर मे लटकती छोड़कर चल दिए। कांग्रेस के विरुद्ध दल खड़ा किया और बम्बई आकर उसके प्रस्तावों के विरुद्ध हमले आरम्भ किए। लोगों को अजीर्ण होता देखकर, समय का विचार करके इलाहाबाद मे दो मास फिर मौन-व्रत रखा। बम्बई मे हुई गत महासमिति की बैठक मे जीत गए, तो अधिक जोरदार कोड़े लगाने का साहस हुआ। मद्रास जाकर महात्माजी पर कड़े आक्षेप करने लगे। आठ महीने पहले यह बात सुनने को कौन तैयार था ?..."

इन्हीं दिनों श्री विट्ठल भाई ने आक्षेप लगाया कि गुजरात के लोग बम्बई महासमिति के निश्चय का आदर नहीं कर रहे, इस कारण आज मैं कांग्रेस को प्रतिष्ठा मटियामेट होते देख रहा हूं। उन्हें भी कोई लाग-

लपेट न रखते हुए करारा जवाब दिया :

"पटेल साहब कहते हैं कि अब तो कार्यकर्ताओं और नेताओं में मत-भेद हो गया है, इसलिए आशा नहीं कि धारासभाओं पर कब्ज़ा किया जा सके। गुजरात प्रान्तीय समिति के अध्यक्ष यदि महासमिति के निश्चय का आदर करना सीखें तो काम हो और कांग्रेस की प्रतिष्ठा बढ़े। महात्मा गांधी भी महासमिति के निश्चयों की इज्ज़त करते थे। बात सही है, दल आज नहीं बने। इसके लिए स्वराज्य दल बनानेवाले ज़िम्मेदार हैं। अब भी कांग्रेस की प्रतिष्ठा बचानी हो तो उन्हें स्वराज्य दल से सम्बन्ध तोड़ लेने चाहिए और धारासभाओं पर अधिकार जमाने की बहस छोड़ देनी चाहिए। गुजरात प्रान्तीय समिति को जब यकीन हो जाएगा कि धारासभाओं में स्वाभिमानपूर्वक काम हो सकता है, तब वह उसका समर्थन करने से नहीं चूकेगी। गुजरात गांधीजी को पटेल साहब से अधिक जानता है। उनके दल ने नेता गांधीजी का आवश्यकता के अनुसार ही उपयोग किया है, जबकि गुजरात यथाशक्ति उनके कदमों पर चलने का प्रमाणिक प्रयत्न करता है। गुजरात की कमज़ोरी गांधी-जी माफ कर देंगे, दुनिया माफ कर देगी और ईश्वर भी माफ कर देगा। अशक्ति अपराध नहीं है। परन्तु, गुजरात विश्वासघात का अपराध नहीं करेगा। गांधीजी महासमिति के निश्चयों का आदर करते थे, इसकी याद गुजरात को दिलाने की पटेल साहब को कोई ज़रूरत नहीं है। गुजरात को मालूम है कि जब गांधीजी बाहर थे, तब सारा देश उनके मुख से निकली हुई आवाज़ पर चलता था। आज नेता लोग ही कांग्रेस के प्रस्तावों को नहीं मानते और दूसरों से अपने मत के अनुकूल प्रस्ताव मनवाना चाहते हैं। फिर कांग्रेस की प्रतिष्ठा कैसे बढ़े ?"

उपर्युक्त दो उदाहरणों से वल्लभ भाई की योग्यता सिद्ध होती है। इतना ही नहीं, इससे भी अधिक अपने उद्देश्य के प्रति ईमानदारी का जो भाव उनके उक्त मन्तव्य में भरा हुआ है, उससे ज़ाहिर है कि किसी भी परिस्थिति में और विशेपकर ऐसी विपम परिस्थिति में जब गांधीजी जेल में थे और कांग्रेस संगठन कमज़ोरियों का शिकार बनता जा रहा था, कितनी गहराई, सच्चाई, निष्ठा और निपुणता से गांधीजी के पद-

चिह्नों पर चलकर वे उनके द्वारा नियुक्त एक योग्य और उच्चतम सेना-पति के कर्तव्य-कर्म का दायित्व-भार वहन करते रहे। दास बाबू उन दिनों देश के चोटी के नेताओं में एक थे, और उस काल में वल्लभ भाई से उनका कोई मिलान नहीं किया जा सकता था, किन्तु आदर्शच्युत होते देख उन्हें भी वल्लभ भाई ने अपने निर्भीक और निर्मम शब्द-प्रहारों में जो सीख और सबक दिया वह उन्हींके अनुरूप था। अपनी निष्ठा, आदर्श और आराध्य के आड़े आनेवाले अपने अग्रज को भी उन्होंने नहीं छोड़ा और कहना न होगा कि आगे चलकर यह विवाद बढ़ने पर यदि जेल से गांधीजी का संकेत, जो उन्हें ऐन वक्त पर राजाजी के तार से मिला, प्राप्त न हुआ होता तो वह अपने अपरिवर्तनवादी आदर्श पर अडिग थे। इतना ही नहीं, उस वक्त कांग्रेस और देश में उन्हींका अनुसरण था। फिर जैसाकि वल्लभ भाई के पूर्व उल्लिखित मन्तव्य से प्रकट है, यद्यपि स्वराज्य दल धारा-सभाओं में गया, किन्तु आगे चलकर सन् 1929 में गांधीजी का निर्देश पाकर उसे खाली हाथ लौटना पड़ा।

वल्लभ भाई इन दिनों गुजरात के सच्चे नेता बन चुके थे, इन्हीं दिनों वास्तव में वे भारतीय राजनीति के मंच पर आए। गांधीजी की गिरफ्तारी के बाद उन्होंने जिस उत्साह, लगन और निष्ठा से कांग्रेस को रचनात्मक प्रवृत्तियों—चर्खा, खादी, स्वदेशी प्रचार, ग्रामोद्धार, अस्पृश्यता-निवारण, किसान-संगठन तथा शिक्षा आदि के कार्यों—को आगे बढ़ाया। वे उनके नेतृत्व और संगठनशक्ति के प्रमाण बन गए। इन्हीं दिनों उन्होंने बर्मा तक की यात्रा कर गुजरात विद्यापीठ के लिए दस लाख रुपये एकत्रित कर उसे स्वावलम्बी बनाया।

नागपुर झंडा सत्याग्रह

तेजी से बदलते हुए घटनाचक्र एवं राजनैतिक अस्थिरता की स्थिति में वल्लभ भाई अपने हाथ में लिए हुए कामों को अंजाम दे रहे थे कि इसी बीच राष्ट्र की प्रतिष्ठा को कसौटी पर कसनेवाला नागपुर झंडा सत्याग्रह आ गया। यद्यपि इसका सूत्रपात जबलपुर से हुआ था। अगस्त, 1922 में जब सविनय भंग जांच-समिति जबलपुर गई, उस समय वहां

की म्युनिसिपैलिटी ने एक प्रस्ताव पास कर हकीम अजमल खां को एक मानपत्र भेंट किया और म्युनिसिपल हॉल पर राष्ट्रीय झंडा फहराया। इतना ही नहीं हुआ, किन्तु म्युनिसिपल कमेटी के सामने दो प्रस्ताव और आए। एक प्रस्ताव में कहा गया कि म्युनिसिपैलिटी पर यूनियन जैक लगाया जाए और दूसरे में यूनियन जैक और राष्ट्रीय झंडा साथ-साथ लगाने की बात कही गई। ये दोनों प्रस्ताव अस्वीकार कर राष्ट्रीय झंडा लगाया गया था। इसपर ब्रिटिश पार्लियामेंट में प्रश्न भी उठा कि यह तो यूनियन जैक का अपमान है। इसके बाद 18 मार्च को गांधीजी के कारावास की वर्षगांठ के दिन पं० सुन्दरलालजी के नेतृत्व में राष्ट्रीय झंडे के साथ एक बड़ा जुलूस निकाला गया। पुलिस ने पं० सुन्दरलाल-जी और उनके दस अन्य साथियों को पकड़कर झंडा छीन लिया। यद्यपि दूसरे दिन सभीको छोड़ दिया गया, किन्तु जब सुन्दरलालजी ने झंडा वापस मांगा तो कहा गया कि वह ज़ब्त कर लिया गया है और अब वापस नहीं मिल सकता। इसपर उन्होंने आपत्ति की और कहा कि यह तो राष्ट्रीय झंडे का अपमान है और इससे आग भड़क उठेगी। उनके इस कथन पर उन्हें पुनः गिरफ्तार कर लिया गया और छः मास की सज़ा दे दी गई। पं० सुन्दरलालजी के कथानुसार आग भड़की और नागपुर, जो उस समय मध्यप्रदेश की राजधानी था, में 13 अप्रैल को राष्ट्रीय झंडे के साथ एक बड़ा जुलूस निकाला गया। मुकाबले के लिए जिला मजिस्ट्रेट और पुलिस सुपरिटेंडेंट पुलिस जमात के साथ पहले से ही मौजूद थे। उन्होंने जुलूस को रोका, इसपर स्वयंसेवकों ने अपने आगे बढ़ने का निश्चय घोषित किया, तो पुलिस उनपर टूट पड़ी। झंडे के डंडे से ही उन्हें खूब मारा और जो नीचे गिर गए उन्हें घसीटकर नाली में फेंक दिया गया।

इसके बाद नागपुर प्रांतीय समिति की कार्यकारिणी ने निर्णय किया कि किसी भी आम रास्ते पर शांतिपूर्वक राष्ट्रीय झंडा लेकर चलने का जनता को अधिकार है और सरकार उसमें रुकावट डालती है, इसलिए तारीख 1 मई से उसके लिए लड़ाई लड़ी जाए और इसके लिए जबल-पुर और नागपुर दोनों स्थानों के बजाए नागपुर पर ही शक्ति केन्द्रित

की जाए। इस लड़ाई के नेतृत्व का भार श्री जमनालालजी बजाज को सौंपा गया। कार्य-समिति के इस निर्णय के साथ ही नागपुर के कलेक्टर ने एक आदेश निकालकर राष्ट्रीय झंडे के साथ निकलनेवाले कांग्रेस के जुलूस पर पाबंदी लगा दी। जबलपुर और उसके बाद नागपुर की इन घटनाओं से एक तूफान उठ खड़ा हुआ। नागपुर में राष्ट्रीय झंडे के प्रदर्शन पर यह पाबंदी केवल नागपुर की ही नहीं अपितु सारे राष्ट्र की प्रतिष्ठा का प्रश्न था। राष्ट्रीय प्रतिष्ठा जब कसौटी पर हो, वल्लभ भाई भला कैसे चुप बैठे रह सकते थे। उन्होंने तत्काल गुजरात प्रांतीय समिति से प्रस्ताव करा खेड़ा जिले से पचहत्तर सैनिकों की एक टोली नागपुर रवाना कर दी। दूसरे जिलों में भी तैयारी आरम्भ हो गई। आर्थिक प्रबन्ध भी किए गए और इस प्रकार एक के बाद एक टोलियां नागपुर पहुंचने लगीं। देश के अन्य भागों से भी देशभक्त सत्याग्रहियों की टोलियां भेजी गईं। सरकार ने झंडा सत्याग्रह को असफल करने और राष्ट्रीय ध्वज का मान-मर्दन करने के लिए सभी प्रयत्न किए अनेक कुटिल चालें चलीं, जमनालालजी को, गिरफ्तार कर उसे नेतृत्व-विहीन बनाना चाहा, किन्तु कांग्रेस ने सत्याग्रह के संचालन का भार वल्लभ भाई को सौंप उसमें और गतिशीलता ला दी। गवर्नर ने सत्याग्रह को एकदम गैर-कानूनी करार दे दिया। इसका वल्लभ भाई पर कोई असर नहीं हुआ और वे अपूर्व उत्साह से सत्याग्रह को सफल बनाने का उद्योग करने लगे। झंडा सत्याग्रह का दृश्य बड़ा रोचक, रोमांचक और मार्मिक था। एक ओर राष्ट्र की मान-मर्यादा और मांग का प्रतीक राष्ट्रीय ध्वज लिए हुए निशस्त्र सत्याग्रही तो दूसरी ओर दुराग्रही शस्त्रधारी सरकार। दृश्य से भासता था मानो एक ओर अहिंसा तो दूसरी ओर हिंसा, एक ओर अभय तो दूसरी ओर भय, एक ओर आनन्द तो दूसरी ओर आत्म-पीड़न एक ओर आत्म-बल तो दूसरी ओर पाशविकता, एक ओर आत्मगौरव तो दूसरी ओर अपयश और अप्रतिष्ठा, एक ओर प्रेम तो दूसरी ओर वैर और घृणा मानो इस सारी लड़ाई में सजीव होकर युद्ध-सन्नद्ध हुए हों। दायित्व और दमन के इस संघर्ष में एक के बाद एक टोली मातृभूमि और

महात्मा गांधी की जय बोल उन्मुक्त गगन में उन्नत राष्ट्रीय ध्वज फहराती आगे बढ़ती गई और बढ़ते हुए संघर्ष के इस दौर में अन्ततोगत्वा सत्य की विजय हुई। अन्याय और अत्याचार के आधार पर काम करने की अभ्यस्त सरकार के पैर उखड़े और वह झुकने पर विवश हो गई। श्री जमनालाल जी बजाज की गिरफ्तारी के दस-पन्द्रह दिन बाद ही गवर्नर ने भी वल्लभ भाई से बातें कीं और बिना किसी शर्त के 9 सितम्बर, 1923 को सभी सत्याग्रहियों को छोड़ दिया। जेल से मुक्त हुए सत्याग्रही उन्नत सिर अपने अरमानों में मातृभूमि का गौरव संजोए, आत्मगौरव से अभिभूत गगन में वही राष्ट्र-ध्वज उछालते हुए लौटे जिसका प्रदर्शन नौकरशाही ने अवैध घोषित कर दिया था।

गांधीजी की अनुपस्थिति में नागपुर का यह झंडा सत्याग्रह वल्लभ भाई के परिश्रम, उनकी संगठन-शक्ति, साहस, शौर्य, संयम, सहिष्णुता और नेतृत्व-शक्ति एवं बुद्धि-चातुर्य की कसौटी था और उसकी यह सफलता ही उनके उक्त गुणों का प्रमाण बन गई।

बोरसद सत्याग्रह

प्रायः अनुभव किया जाता रहा है कि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र के जीवन में प्राकृतिक रूप से ही कुछ ऐसी घटनाओं का सृजन होता है जिन-पर उसका उत्कर्ष या अपकर्ष निर्भर करता है, इतना ही नहीं, अवश्य-म्भावी बन जाता है। गांधीजी के भारत आगमन के बाद से ही ब्रिटिश सरकार का अपकर्ष आरम्भ हो गया था और समाज एवं राष्ट्रीय उत्कर्ष के निमित्त बननेवाले नये चेहरे तेजी से देश के सामने आ रहे थे। वल्लभ भाई इन्हीमें से एक थे। हाल ही में नागपुर झंडा सत्याग्रह के सफल संचालन का श्रेय उन्हें मिल चुका था। उसके बाद दूसरी बार सरकार ने उन्हें फिर छेड़ा। नवम्बर, 1923 में सरकार ने बोरसद तालुके की जनता पर अराजक, विकृत मस्तिष्क वाली, नीच कार्य करनेवाले लोगों को आश्रय देनेवाली तथा उन्हें दण्ड दिलाने में सहायता न करनेवाली आदि आक्षेप लगाकर वहां अतिरिक्त पुलिस नियुक्त कर दी और इस पुलिस के व्यय का दो लाख चालीस हज़ार रुपये का सारा भार बोरसद ताल्लुके

से वसूल करने का आदेश जारी कर दिया। इसके विरुद्ध वल्लभ भाई ने सरकार को चुनौती दी कि वह इन आरोपों को साबित करे। साथ ही उन्होंने गाव-गाव घूमकर जनता के सामने अधिकारियों की कलई खोलते हुए दण्ड-रूप मे लगाए हुए इस नये कर का एक भी पैसा चुकाने की मनाही कर दी। बोरसद की जागरित जनता जिसके नेता वल्लभ भाई थे, सरकारी अधिकारियो की गीदड़-भभकियो से कब डरनेवाली थी। अधिकारियो द्वारा कर चुकाने अथवा ऐसी ही अन्य कोई बात कहने पर अब बोरसद की जनता केवल दो बातें कहने की अभ्यस्त बन चुकी थी। उसकी पहली बात है—"बिना वल्लभ भाई की आज्ञा के हम कुछ नही कर सकते।" और दूसरी बात थी—"जा, जा! तेरे जैसे कितने ही राज्य हमने मिट्टी मे मिलते देखे हैं।" किसानों में वल्लभ भाई के इस अनुसरण और उनके इस सगठन से सरकार हैरान थी, परेशान थी। इधर वल्लभ भाई स्वय भी सरकार की उसके इस कृत्य पर कड़ी आलोचना कर रहे थे। अत सरकार झुकी और महीने-सवा महीने के भीतर ही गवर्नर ने होम मेम्बर को भेजकर सारे मामले की जांच कराई और दो लाख चालीस हजार रुपये का दण्डस्वरूप वसूल किया जानेवाला कर माफ कर दिया। इस प्रकार गुजरात की जनता के स्वाभिमान पर सरकार की यह दूसरी चोट थी जिसमे उसे ही मात खानी पड़ी। उसके ही हाथ जले। गाधीजी से उत्तराधिकार मे मिले साहस और अनुशासन दो महान गुणो के कारण वल्लभ भाई ने सत्याग्रह के इस युद्ध मे भी विजय पाई और गांधीजी की अनुपस्थिति में ही दूसरी बार भी यह सिद्ध कर दिया कि एक सच्चे सत्याग्रही के रूप में उन्होने साहस और अनुशासन को आत्मसात् कर कैसा आचरण का रूप दे दिया है।

12 जनवरी को जब बोरसद का विजयोत्सव मनाया जा रहा था, उसी रात गाधीजी को यरवदा जेल से पूना के सासून अस्पताल में लाकर 'अपेण्डिसाइटीस' का आपरेशन किया गया और 5 फरवरी को उन्हें बिना शर्त रिहा कर दिया गया। वल्लभ भाई जब गाधीजी को देखने गए तो उन्होंने इन शब्दो के साथ उनका स्वागत किया: "आइए! बोरसद के राजा।" स्पष्ट है गाधीजी बोरसद के सफल सत्याग्रह से

काफी सन्तुष्ट थे और उन्होंने बाद में 'नवजीवन' और 'यंग इण्डिया' में बोरसद और उसमें भी वल्लभ भाई की कार्यपटुता की प्रशंसा करते हुए बहुत कुछ लिखा भी था।

इस बीच दिल्ली कांग्रेस के निर्णयानुसार स्वराज्य-दल चुनावों में भाग लेकर धारासभाओं में पहुंच चुका था। यद्यपि यह कांग्रेस की स्वीकृति से वहां गया था, किन्तु कांग्रेस के भीतर स्पष्ट दो दलों के बन जाने के कारण लोगों में मतभेद और असंतोष था। इससे कांग्रेस के कार्यक्रमों के संपादन में भी बाधा पड़ रही थी। इस मतभेद को पाटने और विशेषकर यह स्पष्ट करने की बहुत बड़ी आवश्यकता थी कि कांग्रेस की नीति और कार्यक्रम दोनों में कोई फर्क नहीं पड़ा है। इन दिनों गांधीजी जुहू में स्वास्थ्य-लाभ कर रहे थे। स्वराज्य-दल के नेता भी देशबन्धुदास और मोतीलालजी आदि गांधीजी से बातें करने जुहू पहुंचे। स्वराज्य-दल के नेताओं के साथ धारासभा-प्रवेश के सम्बन्ध में हुई वार्ता के बाद गांधीजी ने 'धारासभाएं और असहयोग' शीर्षक से एक वक्तव्य समाचारपत्रों में प्रकाशित कराया जिससे यह वार्ता भंग हुई यह तो स्पष्ट ही है, इसीके साथ धारासभा-प्रवेश के सम्बन्ध में आरम्भ से ही वल्लभ भाई ने जो मत बना रखा था, और जिससे प्रकट होता है कि उन्होंने असहयोग और गांधी दर्शन को कहां तक समझा और हृदयंगम किया है, उसकी भी पुष्टि हो जाती है, अतः इसे यहां उद्धृत करना उपयुक्त होगा। गांधीजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा :

"स्वराज्य-दल के अपने साथियों के साथ सहमत होने की सारी उत्सुकता और तमाम कोशिशों के बावजूद उनकी दलीलें मेरे गले नहीं उतरीं। हमारे ये मतभेद केवल गौण वस्तुओं और तफसीलों के हों, ऐसा भी नहीं है। मैं देख रहा हूं कि हमारे बीच सिद्धान्तों का ही मत-भेद है। मैं अब भी इस राय पर ज्यों का त्यों कायम हूं कि मेरी कल्पना के असहयोग में धारासभा-प्रवेश के लिए स्थान नहीं है। हमारे बीच का यह मतभेद सिर्फ असहयोग की व्याख्या या अर्थ करने का ही भेद हो सो बात भी नहीं। यह मतभेद असहयोगी के स्वीकार करने की दृष्टि या वृत्ति से सम्बन्ध रखता है जिसके परिणामस्वरूप आज देश के सम्मुख

उपस्थित मौलिक प्रश्नों को हल करने में अन्तर पड़ता है।"

इसके बाद दोनों दलों के मतभेद को समाप्त करने के लिए 27 जून को अहमदाबाद में महासमिति की बैठक बुलाई गई। इसमें असहयोग की तात्त्विक व्याख्या करते हुए जो एक खुला पत्र गांधीजी ने महासमिति के सदस्यों के नाम लिखा उसका भी कुछ अंश यहां उद्धृत करना, केवल उस काल की परिस्थिति जैसी थी उस कारण ही नहीं, अपितु आज देश की जो स्थिति है उसमें भी मार्गदर्शक है। वे कहते हैं :

"अगर सरकारी पाठशालाओं, आन्दोलनों और धारासभाओं के बारे में हमें मोह हो, ऐसी कोई बात उनमें हो, तो हमारा विरोध उस संगठन के विरुद्ध नहीं हुआ, परन्तु संगठन के संचालकों के विरुद्ध हुआ। असहयोग इससे अधिक उन्नत उद्देश्य के लिए बना है। अगर हमारा आशय इतना ही हो कि सरकारी महकमों में अंग्रेजों के बजाए हमारे लोग भर दिए जाएं, तो मैं मानता हूं कि ये बहिष्कार व्यर्थ ही नहीं, हानिकारक भी है। सरकार की नीति का अन्तिम उद्देश्य हमें अंग्रेज बना देना है और जहां हम अंग्रेज बने कि हमारे अंग्रेज मालिक राज्य की बागडोर हमारे हाथों में सौंप देंगे। वे खुशी से हमें अपना एजेण्ट बना लेंगे। इस प्राणघातक क्रिया में मुझे कोई दिलचस्पी हो ही नहीं सकती, सिवाए इसके कि मैं अपनी सारी शक्ति लगाकर उससे लड़ूं। मेरा स्वराज्य हमारी संस्कृति की आत्मा को अखण्ड रखने में निहित है। हमारी संस्कृति में कई नई बातें जोड़ने की मेरी अभिलाषा है, पर ऐसी ही जो हमारे देश को पसन्द हो। पश्चिम से कर्ज लेने में मुझे हिचकिचाहट नहीं हो सकती, परन्तु वह तभी लूंगा जब उसे दूध से धोकर लौटा देने की शक्ति मुझमें आ जाएगी।"

सन् 1924 के बाद माटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधारों के अनुसार अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी को सरकार ने बहाल कर उसके नये चुनाव कराए। इसके निर्वाचित 48 सदस्यों में से जो 35 सदस्य म्युनिसिपैलिटी में पहुंचे वे वल्लभ भाई के अनुयायी थे। देश का इन दिनों जैसा वातावरण था उसमें स्वराज्य की लड़ाई के लिए किसी बड़े और व्यापक संघर्ष की सम्भावना नहीं थी। अतः वल्लभ भाई ने म्युनिसिपैलिटी के माध्यम से

स्थानीय स्तर पर रचनात्मक कार्यों में गतिशीलता लाने के उद्देश्य से कमेटी का कारोबार अपने हाथ में लेना तय किया। कमेटी में सदस्यों का वहुमत उनके पक्ष में था ही, अतः वे अहमदावाद म्युनिसिपल कमेटी के चेयरमैन चुन लिए गए। इन्हीं दिनों जवाहरलालजी और डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी इलाहावाद और पटना म्युनिसिपल कमेटियों के चेयरमैन चुने गए। इसके वाद सन् 1927 में जव फिर चुनाव हुआ, तो वल्लभ भाई दुवारा चेयरमैन चुने गए, यद्यपि उन्होंने 19 अप्रैल, 1928 को अपने पद से त्यागपत्र दे दिया। म्युनिसिपल कमेटी के अपने कार्यकाल में वल्लभ भाई ने अहमदावाद में नगरपालिका के दायित्वों का उच्चतम निर्वाह कर यहां की सफाई, पानी और रोशनी की सुव्यवस्था तो की ही, इसीके साथ जनता में सफाई, स्वास्थ्य और नागरिकता के अधिकारों के प्रति एक नई अभिरुचि उत्पन्न कर उसे जो जागरूकता प्रदान की, वह अभूतपूर्व थी।

वाढ़-संकट

जुलाई, 1927 में गुजरात के एक वहुत वड़े हिस्से में आंधी-तूफान के साथ लगातार-छः दिनों की मूसलाधार वर्षा के कारण भीषण वाढ़ आ गई। इससे जन-धन की हानि तो हुई ही, इस क्षेत्र का सामान्य जन-जीवन भी तहस-नहस हो गया। सैकड़ों मकान धराशायी हो गए। खड़ी फसल और वीज सड़ गए। सारी खेती चौपट हो गई। लोगों का खाना-दाना वह गया, माल-मवेशी से हाथ धोना पड़ा, जहां देखो वहां सर्वत्र वरवादी और तवाही का दृश्य दिखाई देता। ऐसे दारुण और भीषण दैवी प्रकोप से पीड़ित गुजरात ने एक वार फिर अपनी सेवाओं के लिए वल्लभ भाई को पुकारा। यद्यपि पूर्व की सेवाओं में और इस वार की सेवा में एक वहुत वड़ा अन्तर था। इसमें प्रधान अन्तर तो यही था कि अव तक गुजरात का वल्लभ भाई आह्वान करते रहे थे, इस वार गुजरात ने वल्लभ भाई का आह्वान किया था। फिर इसके पूर्व की जो सेवाएं थीं वे गुजरात की खुशहाली के लिए, उसे उसके अधिकार दिलाने के लिए, उसकी आधि-व्याधियों में सहायता पहुंचाने के लिए गुजरात

ने वल्लभ भाई से ली थी और उसकी खुशहाली के लिए बखूबी अपनी सेवाएं वल्लभ भाई ने दी थी। फिर अब तक की सभी समस्याएं और संघर्ष ऐसे आकस्मिक नहीं थे जो आपदा बनकर आएं और इससे भी अधिक ये सभी जीवन के स्वाभाविक संघर्ष थे, मनुष्यकृत थे और इसीलिए कष्ट-साध्य थे, पर असाध्य नहीं। किन्तु यह दैविक प्रकोप, जो आकस्मिक ही होता है, यही नहीं आदमी के अस्तित्व को भी आत्मसात् कर लेने की क्षमता रखता है। इस दैविक प्रकोप ने इस बार गुजरात और उसके नेता वल्लभ भाई दोनों को दयनीय बना दिया था। जान पड़ता था, ब्रिटिश सिंह से लड़नेवाले पुरुष सिंह वल्लभ भाई और उनकी बहादुरी पर नाज़ करनेवाली गुजरात की प्रजा की परीक्षा के लिए ही प्रकृति ने प्रकोप का प्रपंच रचा। ऐसे ही अवसरों पर भान होता है कि केवल लड़ना-लड़ाना, मारना और मार खाना ही बहादुरी नहीं है, अपितु एक जीवित उद्देश्य के लिए सचाई, संयम और सहिष्णुतापूर्वक अविराम उद्योगरत रहना ही ज्वलन्त जीवन की निशानी है। गुजरात की जनता और उसके नेता वल्लभ भाई ने प्रकृति के इस अपराजेय प्रकोप को नतमस्तक स्वीकार तो किया ही, उसे मानव की अपराजेय शक्ति की कसौटी पर भी कस दिया।

इस भयानक संकट के दिनों में वल्लभ भाई ने अहमदाबाद ही नहीं, गुजरात क्षेत्र के बाढ़-पीड़ित सुदूर गांवों में भी अपने सहकर्मियों के साथ घूम-घूमकर दिन-रात एक कर दिया। इन दिनों वे अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन थे ही, अतः कमेटी की ओर से अहमदाबाद को जो तात्कालिक सेवा और सहायता हो सकती थी वह उन्होंने तत्काल पूरी की। श्री विट्ठल भाई इन दिनों केन्द्रीय धारासभा के स्पीकर थे। उन्हें वल्लभ भाई ने पत्र लिखा। श्री विट्ठल भाई पत्र पाकर गुजरात दौड़े और इस संकट के समय में गुजरात को अपनी सेवाएं अर्पित करने वे दो महीने नडियाद में रहे। इतना ही नहीं, वाइसराय लार्ड इर्विन को आग्रहपूर्वक गुजरात बुलाकर प्रकृति की विनाशलीला का दृश्य दिखाया। वाइसराय यहां वल्लभ भाई द्वारा किए जा रहे उत्साहपूर्ण प्रयत्नों से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने सरकार के अकाल-कोष से गुजरात के

बाढ़-पीड़ितों की सहायता के लिए एक करोड़ रुपये की राशि उनके हाथों सौंप दी। गुजरात की इस बाढ़ के समय गांधीजी बंगलौर में बीमार पड़े थे। उन्होंने वल्लभ भाई को तार देकर पूछा: "क्या मैं आऊं?" इसपर वल्लभ भाई ने जो आत्मविश्वास से भरा उत्तर दिया वह इस प्रकार था:

"आप हमको दस वर्ष से शिक्षा दे रहे हैं। उसका हमने कितना पालन किया है तथा उसको हम किस प्रकार कार्य-रूप में परिणत कर रहे हैं, यह देखना हो तो आइए।"

गुजरात पर आई इस विपत्ति का जिस स्तर पर मुकाबला किया गया और हर पीड़ित व्यक्ति को राहत देने का काम जिस तेजी और तत्परता से किया गया, उस सबका यहां उल्लेख सम्भव नहीं। इस समय वल्लभ भाई को एक ही लगन थी कि सारे संकटग्रस्त क्षेत्र में एक भी आदमी अनाज बिना भूखा न रहे, कपड़े बिना जाड़े से न मरे और बीज तथा खेती के साधनों के अभाव में चप्पा-भर जमीन भी बिना खेती के खाली न पड़ी रहे। उनकी यह अभिलाषा अक्षरशः पूरी हुई। इतना ही नहीं, गिरे हुए मकानों को फिर से बनाने और नष्ट हुए गांवों को फिर से बसाने का काम भी किया गया। गुजरात के इस संकट का सामना करने के लिए, जैसाकि ऊपर कहा गया है, सरकार ने और सारे देश ने मुक्तहस्त से सहायता दी। गांधीजी जो बंगलौर में रोग-शैया पर पड़े गुजरात की व्यथा से बड़े व्याकुल थे, बाढ़-कष्ट निवारण के लिए एक बड़ी मार्मिक अपील निकाली, जिसका देशव्यापी असर हुआ और धन-संग्रह, उसके वितरण, सेवा एवं पुनर्वास कार्य में एक योजनाबद्ध रूप में उससे बड़ा प्रोत्साहन और मार्ग-दर्शन लोगों को मिला।

गुजरात में जैसा जल-प्रलय इस समय हुआ वैसा अथवा इससे भी अधिक विनाशकारी प्रकृति-कोप शायद पहले हुआ हो, किन्तु पीड़ितों के लिए व्यवस्थित और व्यापक पैमाने पर जो राहत-कार्य इस संकटकाल में हुआ वैसा इससे पूर्व कभी हुआ होगा, इस बात पर विश्वास नहीं बैठता। गांधीजी की वर्षों की तालीम जो गुजरात और उसके नेता वल्लभ भाई ने आत्मसात् की थी, उसीका यह परिणाम था कि मानव के पराक्रम को

पराजित करनेवाले प्रकृति के इस प्रकोप को भी गुजरात पार कर अपने पैरों पर खड़ा हो गया।

वल्लभ भाई के इस योग्यतम और उच्चतम सेवा-कार्य को सारे देश ने सराहा। सरकार ने भी उनकी मुक्तकंठ से प्रशंसा की। इन दिनों सरकार ने मि० गैरेट नामक एक सज्जन को बाढ़-निवारण का विशेष आफीसर नियुक्त किया था। वे वल्लभ भाई की कार्यप्रणाली एवं कार्यपटुता तथा कार्यकर्ताओं की लगन एवं निस्पृह उद्योगशीलता से बड़े प्रभावित थे। उन्होंने वल्लभ भाई से पूछा: "इस कार्य में आपके और आपके साथियों के इतने अच्छे योगदान के लिए सरकार से कोई तमगे प्रदान करने की मैं सिफारिश करूं, तो आप लोगों को उन्हें स्वीकार करने में कोई आपत्ति तो नहीं ?" वल्लभ भाई मि० गैरेट के इस कथन के साथ ही खिलखिलाकर हंस पड़े और बोले : "मेरे साथी आपके तमगों से कोसों दूर भागनेवाले हैं। उन्हें सेवा-कार्य में ही आनन्द आता है। उन्हें तो कीर्ति या विज्ञापन भी नहीं चाहिए।"

गुजरात इस बाढ़ संकट से उबरा। इतना ही नहीं, इस बार उसने एक ऐसी नई प्रणाली को जन्म दिया जिसका लाभ आगे बिहार में आए भयंकर भूकम्प के समय वहां के सुयोग्य और अनुभवी कार्यकर्ताओं से वहां की जनता को मिला।

बारडोली सत्याग्रह

नियति के नियम तो नियम होते हैं। वे बड़े अटल, निश्चित और निर्णायक होते हैं। उसमें अपवाद नहीं होता। गुजरात और देश की स्वाधीनता के लिए लड़े जानेवाले युद्ध में वल्लभ भाई और बारडोली का जो हिस्सा, रिश्ता और योगदान विधाता ने भाग्य में लिख रखा था उसका अक्षरशः और अक्षरशः पालन हुए बिना न स्वाधीनता की लड़ाई आगे बढ़ सकती थी और न ही वह हमारा द्वार खटखटा सकती थी। सन् 1921 में ही बारडोली सत्याग्रह के लिए उद्यत था, किन्तु चौरीचौरा काण्ड की हत्यारी घटना के कारण उसे इस सौभाग्य से वंचित होना पड़ा।

सन् 1928 में नये बन्दोबस्त के अनुसार सरकार ने बारडोली तालुके

की जमाबन्दी में लगभग 30 प्रतिशत लगान बढ़ा दिया। इधर काश्तकारों की जो माली हालत थी और खेती का जो स्तर था उसमें यह लगान वृद्धि न केवल असामयिक थी, अपितु बहुत ही अवांछनीय और एक बड़ा अन्यायपूर्ण कदम था। सरकार की नीयत और उसकी नीतियों से लोग तंग आ रहे थे, अतः उन्होंने इस लगान-वृद्धि के विरोध के लिए एक बार फिर वल्लभ भाई के सहयोग की मांग की। वल्लभ भाई यद्यपि अभी भी बाढ़-संकट निवारण के कार्यों में लगे हुए थे, किन्तु किसानों की कठिनाइयों में निष्क्रिय बने रहना अथवा उनपर आई किसी भी विपत्ति के समय उन्हें सहायता न देना न केवल उनके स्वभाव-विरुद्ध था, अपितु वे इसे उपेक्षा का पाप समझते थे। एक स्थान पर अपनी अन्तर्वेदना व्यक्त करते हुए उन्होंने अपने भाषण में जो शब्द कहे, उनसे उनकी कृषक-हित-पराणय वृत्ति का पूरा परिचय मिल जाता है। वे कहते हैं : "किसान डरकर दु:ख उठाए और ज़ालिमों की लातें खाए, इससे मुझे शर्म आती है। मेरे जी में आता कि किसान को कंगाल न रहने देकर खड़ा कर दूं और स्वाभिमान से सिर ऊंचा करके चलनेवाला बना दूं। इतना करके मरू तो अपना जीना सफल समझूं।" सत्य तो यह है कि उनकी सेवा और सार्वजनिक जीवन का ध्येय ही ये दीन-हीन किसान थे जो दिन-रात परिश्रम कर, बरसात में पानी से भीगकर, जाड़ों में ठंड से ठिठुरकर और गर्मी में ताप से झुलसकर देश के लिए दाना-दाना अन्न उगाते और जुटाते हैं, किन्तु स्वयं निर्धन, निर्बल और निस्तेज बने हुए हैं। उनका दीन-हीन और निस्तेज चेहरा, अभाव और आपदाओं से आक्रान्त हृदय की बेबसी, जो उनके चेहरों की आकृति और आंखों से झांकती-सी दृष्टिगोचर होती थी, वल्लभ भाई के मन और उनकी आत्मा को कचोटने लगी। उन्होंने बारडोली के इन किसानों को, जो अपनी फरियाद लेकर उनके पास आए थे, आश्वस्त कर बारडोली कांग्रेस को बढ़े हुए लगान के मुद्दों की विस्तृत जांच करने का आदेश दिया। बारडोली कांग्रेस की जांच-रिपोर्ट मिलने पर वल्लभ भाई स्वयं बारडोली गए। वहां उन्होंने एक सार्वजनिक सभा में जनता से सीधा प्रश्न किया कि वह प्रतिरोध के लिए कहां तक तैयार है। उन्होंने इस सभा में सीधे सत्याग्रह की सफलता का

आश्वासन न देकर किसानों के चरित्र, उनकी निष्ठा और लगन को चुनौती देते हुए स्पष्ट शब्दों में उन्हें सत्याग्रह के दरम्यान आनेवाली आपदाओं का हवाला देकर जो बातें कही, उनमें उनके नीचे लिखे वाक्य उल्लेखनीय हैं । उन्होंने कहा :

"मेरे साथ खेल न किया जाए। मैं ऐसे काम में हाथ नहीं डालता जिसमें जोखिम नहीं है। जो लोग जोखिम उठाने को तैयार हों वे मेरे साथ आएं मैं उनका साथ दूगा ।"

इस प्रकार बहुत साफ बातें लोगों को बताकर उन्हें सात दिन की मोहलत देकर वल्लभ भाई अहमदाबाद लौटे । इसके बाद उन्होंने गवर्नर को एक विस्तृत किन्तु विनम्र और मार्मिक पत्र लिखकर यह माग की कि किसानों के साथ न्याय दिलाने की दृष्टि से यह जरूरी है कि नई जमा-बन्दी के अनुसार लगान-वसूली का काम फिलहाल मुलतवी किया जाए और सारे मामले की नये सिरे से जाच कराई जाए । उन्होंने अपने इसी पत्र में यह भी साफ लिख दिया कि सम्भव है, यह लड़ाई तीव्र रूप ग्रहण कर ले, परन्तु इसे रोकना अपने हाथ में है । इसपर गवर्नर के सेक्रेटरी का एक छोटा-सा उत्तर वल्लभ भाई को मिला कि "आपका पत्र निर्णय के लिए माल-विभाग के पास भेज दिया गया है ।"

इधर किसानों को दी हुई अवधि पूरी हो चुकी थी । अतः वल्लभ भाई बारडोली पहुचे । वहां लोगों के साथ जी-भर चर्चा कर एक-एक आदमी से अलग-अलग बात कर सामूहिक रूप से सबकी राय मालूम कर, एक-एक गाव में लोगों से घुमा-फिराकर पक्ष-विपक्ष में तर्क-वितर्क कर सवाल पूछे । उनके चेहरों, आखों और दिलों की गहराई तक झाककर उन्हें देखा। सब ओर वल्लभ भाई को एक उत्तर, विश्वास और निश्चय दिखाई दिया, वह था सत्याग्रह। वे लोगों के निश्चय, विचारों के सयम उत्साह और दृढ़ता से प्रभावित हुए, किन्तु उन्होंने एक बार फिर उन्हें इस सघर्ष में आनेवाले सकटों के प्रति आगाह करते हुए कहा

"यह लड़ाई जबरदस्त खतरों से भरी हुई है । जोखिम-भरा काम न करना अच्छा है, किन्तु किया जाए तो किसी भी कीमत पर उसे पूरा करना चाहिए । हारोगे तो देश की लाज जाएगी । मजबूत रहोगे तो

सारे देश को लाभ होगा, उसकी इज्ज़त बढ़ेगी। अगर मन में हो कि वल्लभ भाई, जैसा लड़नेवाला मिल गया है, केवल इसलिए लड़ेंगे तो लड़ो ही मत। क्योंकि अगर तुम हार गए तो निश्चित मानो कि सौ वर्ष तक नहीं उठोगे। हमें जो करना है वह तुम्हींको करना है। इसलिए पूरा विचार कर, अच्छी तरह समझकर जो करना चाहो सो करो।"

इस प्रकार अनिष्ट-कारण, आशंकाओं और आपदाओं की कसौटी पर लोगों को कसकर, अपने एकमात्र सत्यपक्ष के मुकाबले सरकार के तोप-बन्दूक और पशुबल का हवाला देकर न्याय, सम्मान और स्वाभिमान की रक्षा के लिए बारडोली को सर्वस्व त्याग वाले सत्याग्रह के युद्ध में होम दिया। इन दिनों गांधीजी अहमदाबाद में थे। वल्लभ भाई ने सत्याग्रह आरम्भ करने के पूर्व सारी स्थिति उन्हें समझा दी और उनका आशीर्वाद चाहा। गांधीजी परिस्थिति और वल्लभ भाई के निश्चय दोनों से परिचित थे। अतः उन्होंने तत्काल कहा—"अब मेरे लिए तो इतनी इच्छा करना बाकी रह गया है कि विजयी गुजरात की जय हो।"

इसके बाद बारडोली तालुके के खातेदारों एक वृहद् परिषद् आयोजित की गई जिसमें सभी वर्गों और जातियों के लोगों के साथ बम्बई धारासभा के तीन सदस्य भी सम्मिलित हुए थे। इस परिषद् में सर्वमत से नीचे लिखा प्रस्ताव पास कर उसे कार्यरूप में परिणत करके कहा गया :

"बारडोली तालुके के खातेदारों की यह परिषद् निश्चय करती है कि हमारे तालुके में लिए जाने वाले लगान में सरकार ने जो वृद्धि करने की घोषणा की है, हम मानते हैं कि वह अनुचित, अन्यायपूर्ण और अत्याचारपूर्ण है। इसलिए जब तक सरकार वर्तमान लगान पूरे लगान के रूप में लेने या निष्पक्ष पंच द्वारा इस जमाबन्दी की दुबारा जांच करने को तैयार न हो, तब तक सरकार को लगान बिलकुल न दिया जाए और ऐसा करने में सरकार जब्ती वगैरह और जो भी उपाय काम में ले, उनसे होनेवाले सारे कष्ट सहन किए जाएं।

"अगर सरकार बिना बढ़ाए वर्तमान लगान पूरे लगान के रूप में लेना मंजूर करे तो उतना लगान बिना तकरार के तुरन्त दे दिया जाए।"

एक ओर उपर्युक्त प्रस्ताव का मूर्तरूप सत्याग्रह-संग्राम पूरे उत्साह से जारी था, तो दूसरी ओर सरकार लगान-वसूली के लिए नित नये न्यायहीन, निन्दनीय और निकृष्ट उपाय काम मे ला रही थी। एक ओर लोगो को बहकाने, बरगलाने और गुमराह करने वाले सरकारी फरमान और आदेश निकल रहे थे, अधिकारियों द्वारा उनके माल-मवेशी की कुर्कियो का दौर बढ रहा था, तो दूसरी ओर वल्लभ भाई के तेज, तीखे और तूफानी भाषण और मन्तव्य जनता का मनोबल, उनकी हिम्मत और हौसला बढा रहे थे। बारडोली के मैदान में सरकार और सत्याग्रह दो दलो का यह सग्राम साकार युद्ध का रूप ले चुका था। इस युद्ध की बस एक ही विशेषता थी कि एक ओर अनैतिक उपायो और युद्ध आयुधों से पूर्णतया सज्जित ब्रिटिश सरकार का यान्त्रिक दल था, तो दूसरी ओर स्वदेशी और राष्ट्रीय भावनाओ से भरा निहत्था मात्र सत्या-ग्रह । दोनों के इस युद्ध-रूप और युद्ध साधनो की विभिन्नता के साथ उनके उद्देश्यो की भिन्नता भी इसकी विशेषता थी। एक अपने प्रति-द्वन्द्वी को परास्त करने और अपने हित-साधन के लिए आवश्यकता हो तो पूरे पशुबल द्वारा उसे बर्बाद करने पर आमादा था, तो दूसरा दल न केवल अपने हितभाव से प्रेरित अपितु प्रतिद्वन्द्वी के हितभाव से भरा मात्र उसका हृदय-परिवर्तन करना चाहता था, मानव के उस नैतिक और नैसर्गिक अधिकार के लिए जिसका अधिकारी होने का दावा केवल वह कर रहा है। पहले का आधार, दुराचार और दुराग्रह था, तो दूसरे का सदाचार और सत्याग्रह। एक आरोपी और आक्रामक था, तो दूसरा आत्मानुशासित और अहिंसक, एक का आधार मात्र सत्ता और उसका पशुबल था, तो तो दूसरे का आलम्बन सत्य और आत्मबल, एक बर्ब-रता का प्रतीक था, दूसरा विनय का। दृश्य से जान पडता था, चिरक्षुधित सिंह के सामने आज भेडो का समूह आ खडा हुआ है और उन्हें देख न केवल उसकी भूख ही भाग गई अपितु भय और आत्मग्लानि से पीडित हो वह भाग जाना चाहता है, अपने उसी जगल की ओर जहा से वह आया था। तो उसकी दहाड मे अब दिल दहलनें का वह घोष नही रहा जिसे सुनकर लोगों का कलेजा थर्राने लगता था, उनके पैर कांपने लगते

थे। अब तो उसकी दहाड़ से उल्टा जोश उमड़ता है, पैर थामे नहीं थमते और उसके मुकाबले की व्यथा बढ़ती है।

सत्याग्रह में जनता का यह बढ़ता हुआ जोश सरकार के लिए एक ऐसा सिरदर्द बन गया कि उसके इलाज की उसे अब ढूंढ़े से भी दवा नहीं मिल रही थी। 'ज्यों-ज्यों दवा की मर्ज़ बढ़ता ही गया' उक्ति तथा आग में घी की आहुति के अनुसार उसके हर कदम और प्रत्येक उपाय आन्दोलन को प्रोत्साहन देनेवाले सिद्ध होने लगे। गांधीजी ने भी आन्दोलन के औचित्य की पुष्टि कर सरकारी नीति की भर्त्सना करनेवाले जो वक्तव्य इन दिनों 'नवजीवन' में निकाले उनसे न केवल आन्दोलन को बल मिला, अपितु बारडोली का यह सत्याग्रह तेज़ी से सारे देश में प्रसिद्ध होने लगा और देश का सहयोग और समर्थन प्राप्त होने लगा। श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, जो इन दिनों बम्बई धारासभा के सदस्य थे, ने भी बारडोली के इस सत्याग्रह के सम्बन्ध में गवर्नर से पत्र-व्यवहार कर उसके उचित समाधान का प्रयत्न किया। उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता नहीं मिली। इसके बाद उन्होंने गवर्नर से प्रत्यक्ष में बातचीत की। इस मुलाकात का भी कोई नतीजा नहीं निकला। अन्त में वे वस्तुस्थिति की जानकारी और सारी बातें स्वयं देखने और अनुभव करने की दृष्टि के बारडोली गए। वहां जाकर उन्होंने अनेक गांवों का भ्रमण किया, अनेकों सभाओं में वे सम्मिलित हुए और बहुत-से स्त्री पुरुषों से बातचीत कर जिस निष्कर्ष पर पहुंचे उसे व्यक्त करनेवाला एक वीरतापूर्ण पत्र, जो बारडोली सत्याग्रह के आंखों-देखे दृश्य तथा वल्लभ भाई के एकछत्र नेतृत्व और अनुसरण के रूप में इस काल का एक दस्तावेज़ बन चुका है, गवर्नर को लिखा। इसका कुछ अंश यहां उद्धृत करना उपयुक्त होगा :

"वहां 80,000 स्त्री-पुरुष और बच्चे सुसंगठित विरोध करने की अटल टेक लेकर बैठे हैं। आपके कुर्की अफसर को हजाम के लिए मीलों तक भटकना पड़ता है। आपके एक अफसर की मोटर कीचड़ में फंस गई थी। वह अगर आपके कहे अनुसार लोगों पर गुज़र करनेवाले आन्दोकारी श्री वल्लभ भाई न होते, तो जहां की तहां पड़ी रहती। श्री मार्डी

को जिन्ह हजारों की कीमत की ज़मीन पानी के भाव बेच दी गई है, अपने घर के लिए झाड़ू लगाने वाला भंगी भी नहीं मिलता। कलेक्टर को भी वल्लभ भाई की आज्ञा के बिना स्टेशन पर एक सवारी भी नहीं मिलती। मैंने जिन थोड़े-से गावों को देखा, उनमें से एक भी पुरुष या स्त्री मुझे ऐसी नहीं मिली जिसे पसद किए हुए इस निर्णय पर पछतावा हो, या जो अपने स्वीकार किए हुए धर्म-मार्ग में डगमगा रही हो'''सरकारी रिपोर्टों में यह कहा जाता है कि हर आन्दोलन तो आधारहीन बातों पर खड़ा किया गया आन्दोलन है और लोगों पर उनकी इच्छा के विरुद्ध लादा गया है। नरम से नरम शब्दों में मैं कहूं तो यह बात बिलकुल बेबुनियाद है लोग आपकी सरकार के लोगों के डराने, धमकाने और धर्री देनेवाले प्रयत्नों की हंसी उड़ाते है।'''यह सब बातें मैं इस आशा से लिख रहा हूं कि मेरे जैसों के निजी अनुभव जानकर आप और आपकी सरकार के हृदय में कुछ नहीं तो वस्तुस्थिति की स्वयं जांच करने की इच्छा उत्पन्न हो।'''अपने प्रिय मवेशियों को लूट ले जाने से बचाने के लिए स्त्री, पुरुष और बच्चे पशुओं के साथ-साथ तीन-तीन महीने से अपने छोटे और अस्वास्थ्यकर घरों में बन्द हैं। जब मैं खाली और सुनसान गांव में होकर गुजरा तब वहा एक पक्षी भी नहीं फड़क रहा था, केवल रास्तों में कुछ कोनों पर लोगों ने पहरेदार लगा रखे थे। कहीं कुर्की अफसर न आ रहा हो, इस डर से स्त्रियां खिड़कियों के सीखचों में से कहीं-कहीं देखती हुई नजर आ रही थीं। जब उन्हें विश्वास हो गया कि कुर्की अफसर मैं नहीं हूं, तब उन्होंने अपने घरों के द्वार खोले और मुझे अन्दर आने दिया। जब मैंने उन घरों का अंधेरा, गोबर-कचरा और दुर्गंध देखी और कुर्की कर्मचारियों की निष्ठुरता के शिकार होने देने की अपेक्षा रोग से पीड़ित पीले पड़े हुए फोड़े-फुन्सी वाले दुःखी पशु देखें, उनके साथ एक ही कमरे में बन्द रहना बेहतर समझनेवाले स्त्री, पुरुष और बच्चों को अपने मवेशियों के लिए अब भी लम्बे समय तक यह कारावास स्वीकार करने की दृढ़ प्रतिज्ञा सुनी, तब मुझे विचार करना ही पड़ा कि कुर्की की इस निष्ठुर नीति की कल्पना करनेवालों की, उसे अमल में लानेवालों की सख्ती की और उसे स्वीकृति देनेवाली राजनीति की मिसाल मध्यकालीन युग

के इतिहास के पृष्ठों के सिवाए अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

"कानून का केवल शब्दार्थ करके माने जानेवाले अपराधों के लिए गैर-मामूली, सख्त, शेखी-भरी घोषणाओं की गर्जना और सरकार के खाड़े की खड़खड़ाहट से लोगों के उपहास के सिवाए और कुछ उत्पन्न नहीं होता।"

मुंशीजी ने वारडोली के इस दौरे में जो दृश्य आंखों देखा उससे प्रभावित होकर धारासभा की सदस्यता से तत्काल त्यागपत्र दे दिया। इतना ही नहीं, इस आन्दोलन में सरकार की ओर से लोगों पर अनुचित दवाव डालने के कानून-विरुद्ध जो काम किए गए थे, उनकी कानूनी दृष्टि से जांच कराने के लिए एक समिति का संगठन कर जांच-कार्य कराया।

देश के समाचारपत्रों में इन दिनों वारडोली का सत्याग्रह और उसमें वल्लभ भाई का नेतृत्व वड़ी चर्चा का विषय था। अपनी राजभक्ति पूर्ण नीतियों के कारण सरकार के हर कदम का समर्थन करने के लिए प्रसिद्ध तथा सरकार के विरुद्ध जानेवाली कोई भी बात जिनके गले न उतरे, ऐसे पत्रों को भी वारदोली सत्याग्रह के इस कटु सत्य को स्वीकार करना पड़ रहा था। उन दिनों अपनी राजभक्ति के लिए प्रसिद्ध 'टाइम्स आफ इण्डिया' एंग्लो-इण्डियन पत्र अपने संपादकीय में लिखता है :

"आर्य देश के वम्बई प्रान्त में वारडोली नाम का एक मण्डल है। वहां महात्मा गांधी ने वोलशेविज्म का प्रयोग करना आरम्भ कर दिया है। प्रयोग सफल भी होता जा रहा है। वहां सरकार के सारे कल-पुर्जे मन्द पड़ गए हैं। गांधी के पहले शिष्य का वोलवाला है। वही वहां का लेनिन है। स्त्रियों, वच्चों और पुरुषों में एक नई ज्वाला धधक रही है। इस ज्वाला में राजभक्ति की अन्त्येष्टि-क्रिया हो रही है। स्त्रियों में चमत्कारिक चैतन्यता भर गई है। वल्लभ भाई तो उनके गीतों का विषय हो गया है। अपने नायक वल्लभ भाई में वे असीम भक्ति रखती हैं। पर इन गीतों में राज-विद्रोह की भयंकर आग सुलग रही है। उनको सुनते ही कान जलने लगते हैं। यदि ऐसा ही रहा तो निश्चित वहां रक्त की नदियां वहने लगेंगी।"

सत्याग्रह के इन दिनों में बारडोली पर क्या बीत रही थी ! स्त्री, पुरुष और बच्चे तथा उनके माल-मवेशी किस अवस्था में थे ! इसके साथ ही सरकारी नीतियां जिनमें धमकी, कुर्की, दमन और जब्ती का बढ़ता हुआ जोर था। इस परिस्थिति में लोगों का अपने निश्चय पर अटल बने रहना इस काल का एक अद्भुत और अलौकिक दृश्य था। इस दृश्य को एक रूप और अक्षुण्ण रखने के लिए एक ओर जहां वल्लभ भाई का साहसी व्यक्तित्व, उसका दिन-रात का परिश्रम और संगठन-शक्ति काम कर रही थी, वहीं दूसरी ओर उनके मनोविनोदपूर्ण हास्यरस से भरे हुए तर्कसिद्ध भाषण, जो किसानों की ही बोली में उन्हींके भावों के अनुरूप होते, उसमें गतिशीलता ला रहे थे। उनके इस समय के कुछ भाषणों में से कुछ के नमूने देखिए :

"आज यह सरकार ऐसी मदमत्त हो गई है, जैसे जंगल में कोई पागल हाथी घूम रहा हो और उसकी टक्कर में जो कोई आ जाए उसे वह कुचल डालता हो। पागल हाथी मद में यह मानता है कि मैंने जब बाघों व शेरों को मारा है, तो इस मच्छर की मेरे सामने क्या बिसात है, परन्तु मैं मच्छर को समझाता हूं कि इस हाथी को जितना खेलना हो खेल लेने दो और फिर मौका देखकर उसके कान में घुस जाओ।"

"एक घड़े से बहुत-सी ठीकरियां बनती हैं। लेकिन उसमें से एक ठीकरी भी सारे घड़े को फोड़ने के लिए काफी है। घड़े से ठीकरी क्यों डरे? फूटने का डर किसीको रखना हो, तो वह घड़े को रखना चाहिए। ठीकरी को क्या डर हो सकता है?"

"मैं तुम्हें कुदरत का कानून पढ़ाना चाहता हूं। किसान होने के कारण तुम सब जानते हो कि जब थोड़े-से बिनौले जमीन में गड़कर और सड़कर नष्ट होते हैं तब खेत में ढेरों कपास पैदा होती है। आप मरे बिना स्वर्ग मिल सकता हो तो ही धारासभा में प्रस्ताव पास करने से हमें मुक्ति मिल सकती है।"

"अगर भेड़ों में से उनकी रक्षा करनेवाली भेड़ न निकले तो क्या वे

विलायत से रक्षा करनेवाला ला सकेंगे? ला सकें तो भी उनको पुसाएगा नहीं। वह कोई अढ़ाई आने में नहीं रह सकता। ऐसे छप्परों में नहीं रह सकता। उसे बंगले चाहिए, वगीचे चाहिए, उसकी खुराक दूसरी, उसकी आवश्यकताएं दूसरी। उसे अलग धोबी चाहिए, अलग भंगी चाहिए इस तरह तो सरकार को सिर से मुंडन महंगा पड़ जाए। हर गांव में दो-दो अंग्रेज रखे तो इस तालुके के पांच लाख रुपये वसूल करने के लिए कितने गोरे रखने होंगे और उनका कितना खर्च पड़ेगा, इसके हिसाब लगाना कठिन नहीं।"

अव किसान और साहूकारों की एकता के लिए उनकी उपमा देखिए:

"दूध और पानी मिलाकर एकजीव हो जाते हैं और कभी अलग नहीं होते। दूध उबलता है तव पानी दूध को वचाने के लिए नीचे जाकर पहले खुद जल जाता है और दूध को ऊपर निकालकर उसका वचाव करता है। तव दूध पानी का वचाव करने के लिए खुद उफनकर आग में पड़कर आग को वुझाने की कोशिश करता है। इसी प्रकार आज किसान और साहूकार एक हो जाओ, एक दूसरे की मदद करो और यह निगाह रखो कि इसमें कोई वाधक न वन सके।"

वल्लभ भाई जितने गम्भीर, उतने ही मजाक-पसन्द व्यक्ति थे। इसका भी एक नमूना देखिए: सरकार ने अपने एक आदेश द्वारा आम रास्तों के नजदीक या मुहल्लों में या सार्वजनिक स्थान पर ढोल वगैरह वजाने को जुर्म करार दे दिया था। इसी अर्से में वालोड़ में सरकरी थाने के सामने एक सभा हुई। वहां वल्लभ भाई भाषण दे रहे थे। जव उनका भाषण समाप्त होने को आया तव थाने में वन्द कुर्क की हुई भैंसों की चिल्लाहट सुनाई देने लगी। वल्लभ भाई तत्काल वोले: "सुनो इन भैंसों की चीख। रिपोर्ट करो कि वालोड़ के थाने में भैंसें भाषण दे रही हैं। हमारे ढोल-नगाड़ों की आवाज़ से यह राज्य उलट रहा था, अव इन भैंसों की पुकार सुन लो। अगर अव तक तुम यह नहीं समझते कि यह राज्य कैसा है तो ये भैंसें पुकार-पुकारकर तुमसे कह रही हैं, इस राज्य में इन्साफ मुंह छिपाकर भाग गया है।"

उनके मजाक केवल मन वहलाव अथवा मनोरंजन के लिए नहीं

होते थे अपितु उनका भी एक मुद्दा रहता और मनोरंजन के इन क्षणों में भी उससे एक पल को भी उनकी दृष्टि नहीं हटती थी। भैंसों के सम्बन्ध में उपर्युक्त मजाक करने के बाद उन्होंने यह गम्भीर बात कही :

"मैं जानता हूं कि तमाम दिन दरवाज़े बन्द रखकर मनुष्य और पशु सबका बन्द रहना तुम्हें अखरता है। तुम अपने मवेशी और जायदाद सरकार को लूट जाने देने के लिए तैयार हो। परन्तु मुझे तुम्हें समझाकर दुःख सहन करना सिखाना है और तुम्हें तैयार करना है। इसके बिना इस होशियार और चालाक सरकार के मुकाबले टिक नहीं सकते। मुझे तुम्हें दिखा देना है कि सौ रुपये की नौकरी के लिए जनेऊ पहननेवाला ब्राह्मण हाथ में रस्सियां लिए कसाई को देने के लिए ढोर पकड़ता फिरता है। मुझे तुम्हें यह दिखाना है कि हमारे आदमियों को, ऊंचे वर्ण के लोगों को यह शासन कैसा राक्षसी बना देता है।"

बारडोली की जनता के इस मनोबल, एकता, साहस और सहिष्णुता से सरकार परेशान थी और वह इस अवसर की ताक में रहती कि किसी भी प्रकार कोई झगड़ा-फसाद पैदा कर इस संगठन को छिन्न-भिन्न किया जाए। अत. अधिकारी वर्ग ने लोगों से तरह-तरह की छेड़खानी कर उन्हें उत्तेजित और चिढ़ाने के प्रयत्न आरम्भ किए। सरकार की इस नीति की पोल खोलते हुए वल्लभ भाई ने अपने उद्देश्य और लक्ष्य पर ध्यान केन्द्रित रखने के लिए इस समय लोगों से जो अपील की, उसका भी कुछ अंश यहां देना उपयुक्त होगा

"यह ध्यान रखना कि हमपर कोई कलंक न लग जाए। कोई मर्यादा न छोड़े। गुस्से का कारण मिलने पर भी चुप्पी साध लेना। मुझे कोई कह रहा था कि थानेदार ने किसी आदमी को गालियां दीं। मैं कहता हूं कि उसकी ज़बान गन्दी हुई। हमें पवित्र रखनी चाहिए। अभी तो मुझे कोई गाली दे तो भी मैं सुनता रहूंगा। इस लड़ाई के सिलसिले में तुम गालियां भी खा लेना। तब वह अपने-आप अपनी भूल समझ जाएगा। पुलिस का कोई कर्मचारी अपनी मर्यादा छोड़ दे, तो भी तुम अपनी मर्यादा न छोड़ना। तुम्हारी प्यारी से प्यारी वस्तु लुट जाए, तो भी कुछ न बोलना। हिम्मत न हारना, परन्तु उल्टे हमला।···तेज,

बहादुरी और उसके साथ जैसा मैं चाहता हूं, वैसी विनय—शराफत—यह कमाई हमें योंही कभी मिलनेवाली नहीं थी। मैं ईश्वर से यही मांगता हूं कि इस लड़ाई में इस तालुके के किसानों को यह कमाई मिले।"

सरकार के स्वरूप और उसकी उकसानेवाली कार्रवाइयों का मुकाबला करने के लिए एक सुन्दर उपमा देते हुए वे बोले :

"इस बार सरकार का क्रोध उबल पड़ा है। लोहा जब गरम होता है तब लाल सुर्ख हो जाता है और उसमें से चिंगारियां उड़ने लगती हैं। परन्तु लोहा चाहे कितना ही गरम हो जाए, हथौड़े को तो ठंडा ही रहना चाहिए। हथौड़ा गरम हो जाए तो अपने दस्ते को जलाता है। लोहे को इच्छानुसार रूप देना हो, तो हथौड़े के गरम होने से काम नहीं चल सकता। इसलिए कितनी ही विपत्ति में भी हमें गरम न होना चाहिए।"

वल्लभ भाई के इन भाषणों और सत्याग्रह के संयम एवं सदाचारपूर्ण पक्ष का असर न केवल बारडोली की जनता अपितु वहां काम कर रहे सरकारी मशीनरी के कल-पुर्जों पर भी जोर-शोर से पड़ रहा था। अनेकों पटेलों और पटवारियों ने अपनी नौकरी से इस्तीफे दे दिए और सरकारी यंत्र दिनोदिन शिथिल होने लगा। इस प्रकार सारा बारडोली एक अहिंसक बगावत का उग्र रूप धारण करता जा रहा था।

दिनांक 12 जून को सारे देश में बारडोली दिवस मनाया गया। इस दिन बारडोली के लोगों ने चौबीस घन्टे का उपवास रखा और प्रार्थनाएं कीं। सारे देश में धन-संग्रह किया गया और लगभग दो लाख रुपये चन्दा इकट्ठा कर बारडोली भेजा गया।

दूसरी ओर सरकार द्वारा ज़मीन-जब्ती की कार्यवाही और तेज़ की जा रही थी, लगभग पांच हज़ार लोगों को जब्ती के नोटिस दिए जा चुके थे। जब्त की हुई ज़मीनों को लुक-छिपकर बेचने में जब सरकार असफल हुई, तो उसने खुले आम नीलाम का स्वांग रचा। किन्तु लेता कौन? किसीके बहकावे में आकर बारडोली के बाहर के एक पारसी ने थोड़ी ज़मीन खरीद ली थी। इसपर उसके शहर के लोगों ने और जाति वालों ने उसका कड़ा बहिष्कार किया था। 'बारडोली दिवस' के उपलक्ष्य में जो आयोजन बारडोली में हुआ, उसमें उक्त पारसी के कृत्य पर अपनी

टीका करते हुए वल्लभ भाई बोले :

"किसी भी किसान या साहूकार की चप्पा-भर ज़मीन भी जब तक ज़ब्त रहेगी तब तक यह लड़ाई ख़त्म नहीं होगी । उसपर तो हज़ारों किसान सिर कटा देंगे । यह कोई धर्मराज का गुड़ नहीं लूट रहा है कि भड़ौंच जाकर एक घासलेट वाला पारसी को ले आए, जो जैसा जी में आए लूट मचा दे । यह तो किसानों का ख़ून पीने आना है । ऐसा करने वाले के साथ ईश्वर भी इस जीवन में कैसा न्याय करता है सो न भूलना । पक्का समझ लो कि मुफ्त में ज़मीन लेने को आने वाले की दशा उस नारियल लेने के लिए जानेवाले लोभी ब्राह्मण जैसी होगी।"

इस प्रकार सत्याग्रह की इस समर-भूमि बारडोली से न केवल सरकार के पैर उखड़ गए थे, उसे वहां अपना अस्तित्व बनाए रखना कठिन दिखाई देने लगा । अतः उन्माद और क्रोध में वह उबल पड़ी । उसने अपने विकराल रूप में प्रदर्शन भी किया । फौजी अफसर बारडोली पहुंचे, वहां सैनिक रचना किस प्रकार हो सकती है यह देखा गया । सैनिकों के बरसात में आकर वहां रहने के लिए समान, तिरपाल वगैरह सूरत से बारडोली भेजने की तैयारी होने लगी । सरकार के इस आतंक-भरे कदम की लोगों में भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया हुई ।

24 जुलाई को बम्बई धारासभा का उद्घाटन करते हुए गवर्नर सर लेस्ली ने ज्वालामुखी के लावा की तरह उबलता हुआ एक भाषण दिया जिसमें सरकार की ओर से प्रकाशित वक्तव्य के अनुसार नई जमाबन्दी की सरकार द्वारा खुली और स्वतन्त्र जांच कराने के पूर्व उसके अनुसार पूरा लगान जमा करने की मांग को दुहराते हुए उन्होंने कहा :

"इतना स्पष्ट कर देना मेरा फर्ज है कि अगर ये शर्तें मंजूर नहीं की गईं और उसके परिणामस्वरूप समझौता नहीं हुआ, तो कानून का पूरी तरह अमल कराने के लिए सरकार जो भी कार्रवाई उचित और आवश्यक प्रतीत होगी, वह की जाएगी और सरकार अपनी विधिवत सत्ता को हर प्रकार से मनवाने के लिए अपनी सारी शक्ति का उपयोग करेगी।

उसी दिन ब्रिटिश लोकसभा में लार्ड विण्टर्टन ने सर लेस्ली के भाषण का समर्थन करते हुए कहा :

बहादुरी और उसके साथ जैसा मैं चाहता हूं, वैसी विनय—शराफत—यह कमाई हमें योंही कभी मिलनेवाली नहीं थी। मैं ईश्वर से यही मांगता हूं कि इस लड़ाई में इस तालुके के किसानों को यह कमाई मिले।",

सरकार के स्वरूप और उसकी उकसानेवाली कारवाइयों का मुकाबला करने के लिए एक सुन्दर उपमा देते हुए वे बोले :

"इस बार सरकार का क्रोध उबल पड़ा है। लोहा जब गरम होता है तब लाल सुर्ख हो जाता है और उसमें से चिंगारियां उड़ने लगती हैं। परन्तु लोहा चाहे कितना ही गरम हो जाए, हथौड़े को तो ठंडा ही रहना चाहिए। हथौड़ा गरम हो जाए तो अपने दस्ते को जलाता है। लोहे को इच्छानुसार रूप देना हो, तो हथौड़े के गरम होने से काम नहीं चल सकता। इसलिए कितनी ही विपत्ति में भी हमें गरम न होना चाहिए।"

वल्लभ भाई के इन भाषणों और सत्याग्रह के संयम एवं सदाचारपूर्ण पक्ष का असर न केवल बारडोली की जनता अपितु वहां काम कर रहे सरकारी मशीनरी के कल-पुर्जों पर भी ज़ोर-शोर से पड़ रहा था। अनेकों पटेलों और पटवारियों ने अपनी नौकरी से इस्तीफे दे दिए और सरकारी यंत्र दिनोदिन शिथिल होने लगा। इस प्रकार सारा बारडोली एक अहिंसक बगावत का उग्र रूप धारण करता जा रहा था।

दिनांक 12 जून को सारे देश में बारडोली दिवस मनाया गया। इस दिन बारडोली के लोगों ने चौबीस घन्टे का उपवास रखा और प्रार्थनाएं कीं। सारे देश में धन-संग्रह किया गया और लगभग दो लाख रुपये चन्दा इकट्ठा कर बारडोली भेजा गया।

दूसरी ओर सरकार द्वारा ज़मीन-जब्ती की कार्यवाही और तेज़ की जा रही थी, लगभग पांच हज़ार लोगों को ज़ब्ती के नोटिस दिए जा चुके थे। जब्त की हुई ज़मीनों को लुक-छिपकर बेचने में जब सरकार असफल हुई, तो उसने खुले आम नीलाम का स्वांग रचा। किन्तु लेता कौन? किसीके बहकावे में आकर बारडोली के बाहर के एक पारसी ने थोड़ी ज़मीन खरीद ली थी। इसपर उसके शहर के लोगों ने और जाति वालों ने उसका कड़ा बहिष्कार किया था। 'बारडोली दिवस' के उपलक्ष्य में जो आयोजन बारडोली में हुआ, उसमें उक्त पारसी के कृत्य पर अपनी

टीका करते हुए वल्लभ भाई बोले :

"किसी भी किसान या साहूकार की चप्पा-भर जमीन भी जब तक जब्त रहेगी तब तक यह लड़ाई खत्म नहीं होगी। उसपर तो हजारों किसान सिर कटा देंगे। यह कोई धर्मराज का गुड़ नहीं लुट रहा है कि भड़ौंच जाकर एक घासलेट वाला पारसी को ले आए, जो जैसा जी में आए लूट मचा दे। यह तो किसानों का खून पीने आना है। ऐसा करने वाले के साथ ईश्वर भी इस जीवन में कैसा न्याय करता है सो न भूलना। पक्का समझ लो कि मुफ्त में जमीन लेने को आने वाले की दशा उस नारियल लेने के लिए जानेवाले लोभी ब्राह्मण जैसी होगी।"

इस प्रकार सत्याग्रह की इस समर-भूमि बारडोली से न केवल सरकार के पैर उखड गए थे, उसे वहा अपना अस्तित्व बनाए रखना कठिन दिखाई देने लगा। अत उन्माद और क्रोध मे वह उबल पड़ी। उसने अपने विकराल रूप मे प्रदर्शन भी किया। फौजी अफसर बारडोली पहुचे, वहा सैनिक रचना किस प्रकार हो सकती है यह देखा गया। सैनिको के बरसात में आकर वहा रहने के लिए समान, तिरपाल वगैरह सूरत से बारडोली भेजने की तैयारी होने लगी। सरकार के इस आतंक-भरे कदम की लोगो मे भिन्न-भिन्न प्रतिक्रिया हुई।

24 जुलाई को बम्बई धारासभा का उद्घाटन करते हुए गवर्नर सर लेस्ली ने ज्वालामुखी के लावा की तरह उबलता हुआ एक भाषण दिया जिसमे सरकार की ओर से प्रकाशित वक्तव्य के अनुसार नई जमाबन्दी की सरकार द्वारा खुली और स्वतन्त्र जाच कराने के पूर्व उसके अनुसार पूरा लगान जमा करने की माग को दुहराते हुए उन्होंने कहा :

"इतना स्पष्ट कर देना मेरा फर्ज है कि अगर ये शर्तें मंजूर नहीं की गई और उसके परिणामस्वरूप समझौता नहीं हुआ, तो कानून का पूरी तरह अमल कराने के लिए सरकार जो भी कार्रवाई उचित और आवश्यक प्रतीत होगी, वह की जाएगी और सरकार अपनी विधिवत सत्ता को हर प्रकार से मनवाने के लिए अपनी सारी शक्ति का उपयोग करेगी।

उसी दिन ब्रिटिश लोकसभा मे लार्ड विण्टर्टन ने सर लेस्ली के भाषण का समर्थन करते हुए कहा :

"बम्बई की धारासभा में आज सर लेस्ली विल्सन ने बारडोली के सम्बन्ध में जो शर्तें पेश की हैं उनका पालन न हो तो कानून पर अमल करने के लिए और वहां आन्दोलन को कुचल डालने के लिए बम्बई सरकार को भारत सरकार का पूरी तरह समर्थन है। क्योंकि, ये शर्तें न मानी जाएं तो इस आन्दोलन का यही अर्थ होता है कि वह सरकार को दबाने के लिए किया जा रहा है, न कि लोगों के वाजिब कष्टों का निवारण करने के लिए।"

लार्ड विण्र्टटन का यह भाषण रायटर के तार-समाचारों द्वारा उसी दिन यहां के समाचार-पत्रों में प्रकाशित हुआ, जिससे सारे देश में उत्तेजना फैल गई।

आतंक और धमकियों के इस दौर में वल्लभ भाई ने खाली शब्दों पर गुमराह न होने के लिए लोगों को सतर्क बनाए रखा। देश में गरम दल के लोगों ने तो गवर्नर के इस धमकी-भरे भाषण का हर्षपूर्वक स्वागत भी किया। ऐसे लोगों को इस बात का हर्ष और उत्साह था कि इससे अब सत्याग्रहियों की उत्तमोत्तम परीक्षा होने और स्वराज्य की बड़ी लड़ाई लड़ने का अवसर मिलेगा। गरम दल के कुछ लोगों ने, सरदार शार्दूल सिंह कवीश्वर भी एक थे, अपना यह विचार गांधीजी को एक पत्र लिखकर प्रकट भी किया। उनका मत था कि वल्लभ भाई ने बारडोली सत्याग्रह को मर्यादित रखा है जो अव्यावहारिक जान पड़ता है। अतः अब सारे देश में सविनय भंग का आन्दोलन शुरू होना चाहिए।

गांधीजी ने गरम दल के लोगों की तथा नरम दल के भी ऐसे लोगों की जो सरकारी धमकियों से आतंकित थे भावनाओं को दृष्टि में रख 'यंग इण्डिया' में सत्याग्रह के स्वरूप को अंकित करनेवाली एक बहुत ही सामयिक चेतावनी देते हुए लिखा :

"मुझे पता नहीं, सरदार शार्दूलसिंह के सुझाव पर वल्लभ भाई क्या कहेंगे। परन्तु बारडोली की सहानुभूति के लिए अभी मर्यादित सत्याग्रह भी करने का समय नहीं आया। बारडोली को अभी परीक्षा के पार होना है। अगर वह अंतिम परीक्षा पार कर लेगा और सरकार

आखिरी हद तक जाएगी तो सत्याग्रह को हिन्दुस्तान में फैलने से रोकने की या बारडोली सत्याग्रह का जो सकुचित हेतु है, उसके बजाय उसे विस्तृत होने से रोकने की वल्लभ भाई की या मेरी सामर्थ्य नहीं है। फिर तो सत्याग्रह की मर्यादा देश भर का आत्म-बलिदान और कष्ट-सहन की शक्ति ही बनेगी। अगर यह महाप्रयोग होना ही है, तो वह स्वाभाविक तौर पर ही होगा और कोई भी उसे रोक नहीं सकेगा। परन्तु सत्याग्रह का रहस्य मैं जिस तरह मानता हूं, उस प्रकार तो श्री वल्लभ भाई और मैं सरकार की कितनी ही उकसाहट के बावजूद भी बारडोली सत्याग्रह को उसकी असली सीमा में ही रखने को बंधे हुए हैं, फिर वह उकसाहट इतनी ही हो कि उस मर्यादा को पार कर जाना उचित करार दिया जा सके। सच बात यह है कि सत्याग्रही सदा ही मानता है कि ईश्वर उसका साक्षी है, ईश्वर उसे रास्ता बता रहा है। सत्याग्रहियों का नेता अपने बल पर नहीं जूझता, भगवान के बल पर जूझता है। वह अन्तरात्मा के अधीन रहकर चलता है। इसलिए अनेक बार दूसरों को जो शुद्ध व्यवहार लगता है, वह उसे इन्द्रजाल लगता है। जब आज हिन्दुस्तान पर तुमुल युद्ध मंडरा रहा है, उस समय ऐसा लिखना मूर्खतापूर्ण और स्वप्नदर्शी मालूम हो सकता है। परन्तु मुझे जो सबसे गहरी सचाई प्रतीत होती है, उसे मैं प्रगट न करूं तो मैं देश का और अपनी आत्मा का द्रोही बनता हू। अगर बारडोली के लोग वैसे ही सच्चे सत्याग्रही हों जैसा वल्लभ भाई मानते हैं, तो सरकार के पास कितने ही शस्त्र हों तो भी सब कुशल ही है। देखते हैं क्या होता है। केवल समझौते में दिलचस्पी लेनेवाले धारासभा के सदस्यों और दूसरों से मेरा अनुरोध है कि बारडोली के लोगों को बचाने की आशा में वे एक भी गलत कदम न उठावें। जिसे राम रखता है, उसका कोई बाल बांका नहीं कर सकता।"

इसके बाद गांधीजी 2 अगस्त को बारडोली पहुंचे और अफवाह एवं आशंकाओं के बावजूद बारडोली निवासियों को, वहां के सभी स्त्री पुरुषों और बच्चों को भगवान-भरोसे एक ही आत्म-विश्वास और, अनुसरण में वल्लभ भाई का आदेश पालन करने के लिए उन्मुक और

तत्पर देखकर बड़ा आत्मसन्तोष हुआ।

अब तक सरकार के सारे मनोरथ, उसके सभी प्रयत्न और कुचक्र पूरे हो चुके थे। अतः उसे सद्बुद्धि आई और गवर्नर ने वल्लभ भाई को बातचीत के लिए आमंत्रित किया। इस बातचीत में गवर्नर ने इस आश्वासन के साथ, कि सरकार योग्य मामलों में जांच करके बढ़े हुए लगान को माफ कर देगी, यह मांग की कि सत्याग्रह बन्द कर दिया जाए और लोग पहले के समान कर देना आरम्भ कर दें। वल्लभ भाई ने इस मांग को तो स्वीकार कर लिया, किन्तु साथ ही उन्होंने, इस आन्दोलन के दौरान जिन लोगों को कैद किया गया उन्हें रिहा करने, जिन सरकारी कर्मचारियों ने स्वेच्छा से त्यागपत्र दिए थे उन्हें पुनः अपने काम पर लेने, जिनका माल कुर्क हुआ उसे वापस दिलाने तथा जिनकी ज़मीन कुर्क की गई वह उन्हें लौटाने की अपनी मांगें पेश कीं। सरकार ने वल्लभ भाई की सारी मांगें स्वीकार कर लीं।

इस प्रकार अक्टूबर, 1928 में वल्लभ भाई को बारडोली सत्याग्रह में पूर्ण विजय प्राप्त हुई। बारडोली सत्याग्रह की इस सफलता पर सारे देश में खुशी मनाई गई।

बारडोली सत्याग्रह के समय ही बम्बई की एक सार्वजनिक सभा में आन्दोलन के सफल और सुयोग्य नेतृत्व के लिए वल्लभ भाई की योग्यता एवं कार्य-सम्पादन शैली का वर्णन करते हुए एक नेता ने उन्हें सरदार नाम से संबोधित किया। गांधीजी को यह संबोधन बहुत पसन्द आया और उन्होंने इसकी पुष्टि कर दी। तभी से गांधीजी की इस मुहर के बाद वल्लभ भाई सरदार नाम से पहचाने और पुकारे जाने लगे।

कलकत्ता से लाहौर कांग्रेस तक

दिसम्बर, 1928 में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। पण्डित मोतीलाल नेहरू इसके अध्यक्ष थे। सन् 1925 से देशबन्धुदास का देहान्त हो चुका था। अतः स्वराज्य दल का सारा दायित्व मोतीलाल जी के कन्धों पर आ पड़ा था। देश में इस समय जो एक प्रकार की राजनैतिक अस्थिरता थी, उसका कारण गांधीजी के सक्रिय नेतृत्व

का अभाव था। वे इन दिनों देश की राजनीति में कोई विशेष दिलचस्पी नहीं ले रहे थे। इन्हीं दिनों साइमन कमीशन भारत-भ्रमण कर रहा था जिसका देश-भर में सर्वत्र जोरदार बहिष्कार भी हुआ था। कमीशन के इस बहिष्कार के कार्यक्रम में भाग लेते हुए लाहौर में लाला लाजपतराय पर पुलिस ने जोरदार लाठी-चार्ज किया। वे गम्भीर रूप से घायल हो गए जिसके परिणामस्वरूप शीघ्र ही उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई। उत्तर प्रदेश में भी पण्डित जवाहरलाल नेहरू पर लाठी-चार्ज हुआ, इन दोनों घटनाओं से देश में काफी क्षोभ था। इसी समय शासन-विधान की योजना, जो नेहरू कमेटी रिपोर्ट के नाम से देश में विख्यात हुई, देश के सामने आई। इसे देश के सभी दलों का विश्वास और समर्थन प्राप्त था। देश की युवक टोली, जिसके नेता पण्डित जवाहरलाल नेहरू, सुभाषचन्द्र बोस और श्री-निवास आयंगर थे, नेहरू कमेटी में निर्दिष्ट 'औपनिवेशिक स्वराज्य' के स्थान पर 'पूर्ण स्वाधीनता' शब्द लाना चाहते थे। मोतीलालजी को यह बात मालूम थी कि उनका ही बेटा, उनकी इस योजना का कलकत्ता की इस कांग्रेस में विरोध करने जा रहा है। उन्होंने इसी आशंका को लक्ष्य रख गांधीजी को आग्रह पूर्वक लिखा : "मुझे सभापति की कुर्सी पर बिठाकर, मेरे सिर पर कांटों का ताज रखकर मेरा संकट दूर बैठे-बैठे न देखिए।" गांधीजी नेहरू रिपोर्ट को उनका एक बहुत बड़ा कार्य मानते थे, विशेषकर इसलिए कि उसे देश के सभी दलों का समर्थन प्राप्त था। इसके साथ ही मोतीलालजी की गांधीजी पर जो अगाध श्रद्धा थी और गांधीजी भी मोतीलाल-जी को जिस स्नेह से देखते थे, अपने इस सम्बन्ध, जो मित्र-धर्म बन गया था, के कारण गांधीजी ने मोतीलालजी को लिख दिया : "आप कहेंगे उस दिन सेवा में हाजिर हो जाऊंगा और आप कहेंगे उस दिन विदा ले लूंगा।" तदनुसार कलकत्ता कांग्रेस में औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वराज्य के प्रश्न पर पूर्वआशंका के अनुसार जब संघर्ष उपस्थित हुआ तो गांधीजी ने अपने चमत्कारिक हस्तक्षेप और नेतृत्व से संगठन को फूट से और मोतीलालजी को धर्म-संकट से बचा लिया। 'पूर्ण स्वाधीनता' के हिमायती वर्ग को भी संतुष्ट करने की दृष्टि से ही गांधीजी ने

अपने औपनिवेशिक स्वराज्य के प्रस्ताव की अवधि दो वर्ष से घटाकर एक वर्ष कर दी। इस प्रकार गांधीजी के इस प्रस्ताव द्वारा कलकत्ता की इस कांग्रेस ने देश में सन् 1930 में होनेवाले स्वातन्त्र्य संग्राम की नींव रखी।

वल्लभ भाई कलकत्ता की इस कांग्रेस में उसका आकर्षण थे। वारडोली के विजेता सरदार वल्लभ भाई पटेल के नाम से सारा देश उनसे भली भांति परिचित था ; यही नहीं, उनकी इस विलक्षण सफलता के कारण एक कौतूहलपूर्ण दृष्टि से उनका सम्मान करने को आतुर भी हो उठा था। कांग्रेस में वारडोली के सत्याग्रहियों को वधाई देनेवाला प्रस्ताव जब अध्यक्ष की ओर से उपस्थित हुआ तो सहस्रों प्रतिनिधियों और दर्शकों ने वल्लभ भाई के दर्शन की मांग की। वल्लभ भाई बड़े आग्रह पर संकोच पूर्वक अपने स्थान पर खड़े हुए। इतने से लोगों का सन्तोष नहीं हुआ और उनके भाषण की मांग की गई। सरदार सभामंच पर जाने को तैयार नहीं हुए तो लोग उन्हें घसीटकर वहां ले गए और खड़ा किया। मंच पर खड़े होते ही उनके जय-जयकार से सारा पंडाल गुंजायमान हो उठा। वल्लभ भाई इस जयघोष के बीच कुछ ही शब्द बोले जो इस प्रकार थे :

"वारडोली के किसानों को आपने धन्यवाद दिया, इसलिए मैं आपका बहुत आभार मानता हूं। अगर आप उनका सच्चा धन्यवाद करते हैं, तो मैं उम्मीद करता हूं कि आप वारडोली का अनुकरण करेंगे।"

दिसम्बर, 1929 का लाहौर कांग्रेस अधिवेशन देश की एक नवीन चेतना, आनेवाली एक नई जागृति का प्रतीक था। जवाहरलाल नेहरू इसके अध्यक्ष थे और उन्हें यह पददायित्व उस वक्त के कांग्रेस अध्यक्ष उनके पिता पण्डित मोतीलाल नेहरू से मिला था। लाहौर के इस अधिवेशन की अन्य विशेषताओं के साथ औपनिवेशिक स्वराज्य के ध्येय को बदलकर 'पूर्ण स्वाधीनता' घोषित करना इस अधिवेशन की प्रधान विशेषता थी। अपने ध्येय की घोषणा के साथ उसे प्राप्त करने के लिए विधिवत् जो प्रस्ताव इस अधिवेशन में पास हुआ, उसके अनुसार कांग्रेस के इस अधिवेशन में ही पूर्ण स्वाधीनता की रण-दुंदभी वज गई। अव

जवाहरलालजी कांग्रेस अध्यक्ष थे और देश का नेतृत्व गांधीजी ने संभाल रखा था।

भारत स्वाधीनता के लिए लड़े जानेवाले इस सारे महायुद्ध का आधार वही था जो खेड़ा बोरसद और बारडोली का रहा। वल्लभ भाई इन दिनों बारडोली के महान् विजेता के रूप में सारे देश में प्रसिद्ध थे। कलकत्ता कांग्रेस के बाद ही वे देश के अग्रगण्य नेताओं की पंक्ति में आ गए थे और लाहौर कांग्रेस के सभापति पद के लिए उनका नाम भी प्रस्तावित हुआ था, इतना ही नहीं, समर्थन की दृष्टि से कांग्रेस दल में उनका जवाहरलाल नेहरू से पहला और गांधीजी के बाद का स्थान था। किन्तु उस वक्त की देश की परिस्थिति और गांधीजी द्वारा जवाहरलालजी के समर्थन का संकेत था उन्होंने अपना नाम प्रस्तावित होने पर भी वापस ले लिया। इसके बाद मार्च, सन् 1930 में कांग्रेस का कराची अधिवेशन वल्लभ भाई की अध्यक्षता में हुआ। इसके पूर्व नमक सत्याग्रह में भाग लेने के कारण वे पौने चार मास का कारावास भोग चुके थे और इन्हीं दिनों चल रहे देशव्यापी नमक सत्याग्रह के आन्दोलन के कारण जब कांग्रेस अध्यक्ष जवाहरलालजी की गिरफ्तारी हुई, तो उनकी गैरहाज़िरी में जवाहरलालजी द्वारा मनोनीत उत्तराधिकारी पण्डित मोतीलाल नेहरू ने काम किया, किन्तु जब वे भी गिरफ्तार कर लिए गए, तो उन्होंने अपनी गैरहाज़िरी में स्थानापन्न कांग्रेस अध्यक्ष के रूप में वल्लभ भाई को संगठन की बागडोर सौंप दी। सरदार ने कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से इन दिनों जो काम किया उससे सारा संगठन सुदृढ़ और सुगठित तो हुआ ही, आन्दोलन में भी नई जान आ गई। इसके बाद देश की स्वाधीनता तक उसके सारे आन्दोलनों और कार्यक्रमों में गांधीजी के एक अन्यतम साथी और सहधर्मी के रूप में कष्ट सहन, कारावास और कुर्बानियों की वे एक ऐसी कहानी बने जिसका आरम्भ तो है पर अन्त नहीं। स्वाधीनता के लिए लड़े जानेवाले इस युद्ध में वल्लभ भाई नहीं हैं, यह ढूंढ़ पाना कठिन ही नहीं असम्भव है। उनके इस योगदान को लिपिबद्ध कर सकना भी सम्भव नहीं है। उनकी इस संक्षिप्त जीवनी में संक्षेप से कहें तो इतना ही कहना पर्याप्त

होगा कि देश के उस काल के उन इने-गिने नेताओं और भाग्य-विधाताओं में गांधीजी के बाद की पंक्ति में वे किसीसे पीछे नहीं थे और उस सर्वाग्रणी पंक्ति में भी वे अकेले और अद्वितीय थे। फिर उनका काम और जीवन-उद्देश्य मात्र देश की स्वाधीनता न होकर उसके बाद आरम्भ होनेवाला था। स्वाधीनता तो उनके लिए एक साधन थी, जिसके द्वारा उन्हें अपने साध्य तक पहुंचना था। अतः स्वतन्त्रता-संग्राम के सेनानी के रूप में उनके योगदान का यह अध्याय जवाहरलालजी के इन शब्दों में, जो उन्होंने वल्लभ भाई के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए व्यक्त किए थे, उल्लेख करके समाप्त किया जाता है।

"स्वातन्त्र्य-युद्ध की हमारी सेनाओं के एक महान् सेनापति के रूप में उनको हममें से अनेक व्यक्ति सम्भवतः सदा स्मरण करते रहेंगे। वह एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने संकटकाल में तथा विजयवेला में सदा ही ठोस और उचित परामर्श दिया। वह एक ऐसे मित्र, सहयोगी तथा साथी थे जिनके ऊपर निर्विवाद रूप से शक्ति की ऐसी मीनार के रूप में भरोसा किया जा सकता था, जिसने हमारे संकट के दिनों में हमारे द्विविधा में पड़े हुए हृदयों को पुनः शक्ति प्रदान की।"

राष्ट्र-निर्माता

प्रकृति की रचना में कोई भी वस्तु निरर्थक, निरुद्देश्य और निरुपयोगी नहीं। फिर मनुष्य तो, जो उसकी सर्वश्रेष्ठ कृति है, उद्देश्य और उपयोगिता की कसौटी है, उसकी चरमसीमा है। इस व्यापक और विशाल जगत् में भी कुछ निश्चित, नियमित और पूर्व-नियोजित है, भले ही हम उसे स्वीकार करें अथवा न करें। प्रकृति की सत्ता उसकी रचना अपने-आप अपने सहज रूप से ही करती रहती है और कराती रहती है। मानव की स्वीकृति अथवा अस्वीकृति से सर्वथा अप्रभावित नियति का यह निर्बाध नियम प्रकृति काल से ही चला आ रहा है। इसमें कभी कहीं कोई अपवाद नहीं हुआ। प्रकृति के इस नियम के व्यावहारिक रूप को विचार की दृष्टि से यदि हम देखें तो कुछ तथ्य सामने आते हैं जो

उसके उद्देश्य और उपयोगिता को तो प्रमाणित करते ही हैं, हमारे मन में बलात् इस विश्वास की उत्पत्ति कर उसकी प्रतिष्ठा भी कर देते हैं *कि मानव अपने निर्दिष्ट लक्ष्य से*, जो प्रकृति-निश्चित है, आज-पर्यन्त एक पल भी और एक पग भी आगे नही बढ़ पाया है। ब्रिटिश साम्राज्य की दासता से पगु और पीडित भारत को लोकमान्य तिलक ने 'स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है'—यह जागृति-मन्त्र दिया, तो उनके बाद महात्मा गाधी ने स्वयं इस जागृति-मन्त्र के एक प्रतीक-रूप मे लोगों को उसकी अनुभूति करा उन्हे उसका व्यावहारिक ज्ञान कराया, इतना ही नही, जीवन के इस अधिकार की प्राप्ति एवं प्रतिष्ठा के लिए उनमे प्राण फूके और उसे अपने जीवनकाल मे ही प्राप्त करा दिया। जवाहर-*लालजी को ही लीजिए। उनके जीवन-दर्शन एव विचारों से स्पष्ट ज्ञात* होता है कि भारतीय स्वाधीनता उनका जीवन-लक्ष्य नही था, वह तो उनकी मजिल का पहला पडाव था। उसके बाद काग्रेस और गाधीजी द्वारा पूर्व-घोषित नीति के अनुसार तथा बापू के उत्तराधिकारी के नाते देश मे प्रजातन्त्र की स्थापना और राष्ट्र-निर्माण के काम, जिनमे विश्व-शाति की स्थापना के प्रयत्नों का एक बहुत बड़ा सकल्प अन्तर्निहित या सर्वोपरि थे। प्रजातन्त्र की स्थापना हुई, तीन-तीन आम चुनावो के द्वारा उसका परीक्षण और पुष्टि हुई तथा विश्वशाति के अपने महान् सकल्प को भी उन्होंने अपने जीवन मे भयावह सघर्षों की कसौटी पर कसा और उसकी प्रामाणिकता प्रतिपादित कर दी। इसी प्रकार सरदार वल्लभ भाई पटेल का जीवन हमे एक महत् उद्देश्य और संदेश देता है, जिसकी पूर्ति और प्रतिष्ठा के लिए *उनका जीवन लगा और उसकी प्राप्ति के* साथ ही उनका जीवन समाप्त हो गया।

भारत को स्वाधीनता मिली किन्तु क्षत-विक्षत। देश आज़ाद तो हुआ परन्तु उसकी आज़ादी के इस नक्शे मे अभी भी ऐसी रग-बिरगी सीमाए, रेखाए और लकीरें मौजूद थी जिन्हे पार किए बिना आगे बढना मुश्किल था। पराधीनता के पाश से हमे मुक्ति तो मिली किन्तु पाकि-स्तान के रूप मे मातृभूमि के विभाजन की एक बहुत बड़ी कीमत भी हमें चुकानी पडी। स्वाधीनता की खुशी के साथ देश ने दुर्भाग्य के इस दु...

को भी उठाया। पर पराधीनता के प्रभाव का यह अंतिम परिणाम था सो वात भी नहीं थी। अंग्रेज़ों ने जाते-जाते जो भी वे कर सकते थे सो किया और मातृभूमि के इस दारुण विभाजन के वाद भी वे देश में स्थित उन देशी रियासतों को, जिनकी संख्या 562 थी, यह स्वतन्त्रता दे गए कि चाहें तो वे भारतीय संघ में शामिल हों या पाकिस्तान में, अथवा उनकी इच्छा हो तो वे एक इकाई के रूप में अपना अलग स्वतन्त्र अस्तित्व बनाए रखें। स्वाधीनता का यह सुप्रभात, जिसमें पाकिस्तान के रूप में एक नये राष्ट्र का उदय और उसके साथ ही देश में स्थित इन देशी रियासतों की यह स्थिति जिसमें स्वेच्छा-निर्णय का अधिकार अनुबंधित था, राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के सुकुमार और कोमल पौधे के आरोपण-काल में, जव उसमें न जड़ें ही निकली थीं और न कोपलें ही फूटी थीं, एक भीषण और भयंकर विग्रह, विघटन और गृह-कलह-रूपी वायु के ववण्डरों, आंधी और तूफानों को लेकर आया। लगता था, स्वाधीनता का यह नवजात पौधा उसके प्रसव-काल में ही मुरझा जाएगा। भारतीयों को सत्ता हस्तान्तरित करने के जिन अगणित वहानों में हमारी अयोग्यता को जो एक वहाना अंग्रेज मुद्दत से करते रहे थे वह वर्तमान परिस्थिति में, जवकि वे जा चुके थे, देश के नेताओं के लिए एक कसौटी वनकर सामने आया। अंग्रेजी के इसी प्रलाप से व्यथित हो एक वार महात्माजी ने स्पष्ट कहा था : "अंग्रेज भारत को उसके भाग्य और भगवान के भरोसे छोड़ जाएं। यदि वे ईश्वरवादी नहीं हैं तो मैं कहूंगा, उसे अराजकता की स्थिति में ही छोड़ जाएं।" इन दिनों देश की यही स्थिति थी।

उस काल के हमारे देश के नेताओं के सामने देश का यह मानचित्र, जो स्वाधीनता के पूर्व के उनके मनोकल्पित मानचित्र से तो भिन्न था ही, स्वाधीनता के आरम्भिक आधार की दृष्टि से भी भयप्रद था। इस समय देश के वैधानिक और व्यावहारिक कर्णधारों में दो प्रधान थे। पं० जवाहरलाल नेहरू भारत राष्ट्र के प्रधानमन्त्री थे और सरदार वल्लभ भाई पटेल उसके उप-प्रधानमन्त्री और गृहमन्त्री। स्वाभाविक ही नेहरूजी की अपेक्षा देश की इस स्थिति और उसके वर्तमान मानचित्र में राष्ट्रीय आत्मा को, उसकी स्वाधीनता को विघ्न-वाधाओं और गतिरोधों से मुक्त

कर स्थायित्व एवं अखण्डता प्रदान करना वल्लभ भाई का ही दायित्व था। उन्होंने बड़ी विनय, विवेकशीलता और बहादुरी से अपनी नजर उठाई और देश के इस मानचित्र को समता, शालीनता और स्थायित्व देने के प्रयत्नों की खोज में लगा दी।

यहां यह उल्लेखनीय है कि भारत के औपनिवेशिक स्वराज्य-प्राप्ति की 12 मई, 1947 की घोषणा का अनेक देशी राज्यों ने यह अर्थ लगाया कि अब वे भी पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो जाएंगे। इतना ही नहीं, अपनी इस नासमझी की त्रावणकोर ने 12 जून को घोषणा कर दी। बाद में निजाम ने भी ऐसी ही घोषणा की। इन घोषणाओं से प० नेहरू तथा सरदार पटेल के कान फटके और दोनों ने इस प्रश्न को पार्टी के नेताओं की 13 जून, 1947 की बैठक में उपस्थित भी किया। बैठक लार्ड माउण्टबेटन ने बुलाई थी। इस बैठक में कांग्रेस की ओर से पं० नेहरू, सरदार पटेल तथा आचार्य जे० बी० कृपलानी तथा मुस्लिम लीग की ओर से मि० जिन्ना, श्रीलियाकत अली खां और अब्दुल-रब निश्तर, सिक्खों की ओर से सरदार बलदेवसिंह तथा राजनीतिक परामर्शदाता सर कानराड कारफील्ड ने भाग लिया। प० नेहरू तथा सरदार पटेल ने देशी राज्यों की अलग रहने की नीति का जब विरोध किया तो श्री जिन्ना ने उनकी अलगाव की नीति का समर्थन किया। बहुत वाद-विवाद के बाद यह निश्चय किया गया कि देशी राज्यों से सम्पर्क रखने के लिए भारत सरकार एक नये विभाग की स्थापना करे। इस सम्बन्ध में गवर्नर-जनरल के विधान-सम्बन्धी परामर्शदाता राव बहादुर वी० पी० मेनन को एक नोट प्रस्तुत करने को कहा गया। श्री मेनन ने नोट तैयार किया और उसके अनुसार 25 जून, 1947 को अन्तरिम सरकार के मन्त्रिमण्डल ने रियासती विभाग की स्थापना सरदार वल्लभ भाई पटेल की अधीनता में करने का निश्चय किया। 5 जुलाई, 1947 को इस विभाग की स्थापना हुई और सरदार पटेल ने श्री वी० पी० मेनन को ही इसका सेक्रेटरी बनाया। इसी दिन सरदार वल्लभ भाई पटेल ने देशी राज्यों के नाम एक संदेश में उनसे अनुरोध किया कि वह भारत सरकार के साथ शीघ्र ही यथापूर्व समझौते करके अपनी रक्षा, विदेशी,

सम्बन्ध तथा यातायात के विषय केन्द्रीय सरकार को सौंप दें। श्री जिन्ना ने एक सार्वजनिक वक्तव्य देकर फिर इस योजना का विरोध किया। इसके बाद लार्ड माउण्टबेटन ने 15 जुलाई, 1947 को समस्त राजाओं की एक बृहत् बैठक आयोजित की, जिसमें उन्होंने सरदार पटेल के उक्त मन्तव्य को दोहराते हुए इतना और जोड़ दिया कि वे अपनी सुरक्षा, परराष्ट्र-सम्बन्ध तथा यातायात के अधिकार-साधनों का पूरा दायित्व अपने समीपवर्ती क्षेत्र भारत अथवा पाकिस्तान की केन्द्रीय सरकार को सौंप दें। इन्हीं दिनों श्री जिन्ना ने जोधपुर, जैसलमेर तथा बीकानेर के राजाओं को पाकिस्तान में सम्मिलित होने के लिए बहुत कुछ फुसलाया। इतना ही नहीं, जोधपुर के महाराज हनुमंतसिंह इसके लिए सहमत भी हो गए, किन्तु बाद में लार्ड माउण्टबेटन, सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा श्री वी० पी० मेनन के प्रयत्नों से वे भारतीय संघ में शामिल होने पर राजी हो गए और उनके सहित भारत सरकार द्वारा नियुक्त एक उप-समिति ने यथापूर्व समझौतों एवं सम्मिलन समझौतों की जो रूपरेखा सरकार के परामर्श से तैयार की थी उसपर हैदराबाद, जूनागढ़ तथा कश्मीर को छोड़ सभी राज्यों ने अपने हस्ताक्षर कर दिए। इस प्रकार 15 अगस्त, 1947 तक उक्त तीन राज्यों को छोड़ शेष सभी राज्यों और भारत सरकार के बीच पिछली सन्धियों का नवीनीकरण हुआ अथवा उन्हें पुनः स्वीकार किया गया।

किन्तु, देशी रियासतों की समस्या का यह समाधान न होकर उसका मात्र सूत्रपात था। समाधान होना तो अभी बाकी था। देश की सुरक्षा, उसकी अखण्डता के साथ ही देश में कानून तथा व्यवस्था एवं प्रगति की दृष्टि से भी जिस व्यावहारिक तालमेल की आवश्यकता है वह इस समझौते-मात्र से अथवा रियासतों की वर्तमान स्थिति में संभव नहीं थी। फिर ब्रिटिश साम्राज्य की दासता से भारत तो मुक्त हुआ किन्तु रियासतों एवं राजाओं से उत्पीड़ित जनता अभी भी उनके सामन्ती शिकंजे में दबी हुई कराह रही थी। देश को स्वराज्य तो मिला, किन्तु अभी भी वह बड़ी विषमता और बीमारियों से भरा हुआ था। राज्यों की प्रजा में भी अपनी वर्तमान स्थिति से भीषण असंतोष उभर रहा था और वह अपनी

मुक्ति के लिए बेचैन हो उठी थी। इन सभी दृष्टियों से अन्तिम हल के रूप मे सरकार और सरदार पटेल के सम्मुख यही एक रास्ता था कि सभी नृपतिगण अपने निर्वाह के लिए सरकार से एक निश्चित राशि अपनी वार्षिक आय के रूप में लेकर अपने-अपने राज्यो की बागडोर सरकार के हाथो सौप दे। राजाओ को दी जानेवाली निर्वाह की इस राशि पर अनेक दृष्टियो से विचार करने के उपरान्त यह निश्चय किया गया कि रियासत की वार्षिक आय के आधार पर प्रथम एक लाख पर 15 प्रतिशत, अगले चार लाख की वार्षिक आय पर 10 प्रतिशत तथा पाच लाख से अधिक की समस्त आय पर साढे सात प्रतिशत दिया जाए। इसके लिए सन् 1945-46 के वर्ष की आय को आधार माना गया। इसके साथ ही राजाओ की व्यक्तिगत संपत्ति आदि के सम्बन्ध में भी उचित निर्णय लिए गए। इसीके साथ प्रतिष्ठा की दृष्टि से अनेक राजाओं को राज-प्रमुख पद दिए गए जिन्होने इन राजाओं की हार्दिक महत्त्वाकाक्षा को तृप्त एव सतुष्ट किया।

इन दिनों भारत सरकार उड़ीसा में हीराकुड बांध के लिए किसानों से जमीन ले रही थी। पटना के राजा ने किसानों को सरकार के विरुद्ध बगावत करने के लिए भडकाया। बस्तर आदि अन्य क्षेत्रों मे भी वहां के शासक वर्ग द्वारा इन्ही दिनो बड़ी गडबड़ी की जा रही थी। वल्लभ भाई अपने इस नये सकल्प को मूर्त्तरूप देने 13 दिसम्बर, 1947 को श्री वी० पी० मेनन को साथ लेकर कटक पहुंचे। 14 दिसम्बर को उन्होंने वहां छोटे-छोटे राजाओ को बुलाकर एक बैठक मे उनके सम्मुख अपना एक सक्षिप्त, पर प्रभावशाली भाषण दिया। अपने इस भाषण मे सरदार पटेल ने बड़े सतुलित और साफ शब्दो मे नृपतियों को बतलाया कि उनके राज्यों की आन्तरिक अशाति को दूर करने का उपाय केवल यही है कि या तो उनके शासन को भारत सरकार हस्तगत कर ले अथवा वे स्वेच्छा से निर्वाहशुल्क लेकर अपना-अपना राज्य भारत सरकार को सौंप दें। इस समय राजाओ को विलय-संधिपत्र की प्रतियां भी दी गई थी। वाद-विवाद एवं प्रश्नोत्तरो के बाद उपस्थित सभी राजाओ ने सरदार पटेल के विलय-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। इसके

वाद उन्होंने बड़े राजाओं को बुलाया। उनसे दो टूक बात की और अन्त में उन्होंने भी विलय-पत्र पर हस्ताक्षर कर दिए। उड़ीसा के राज्यों की समस्या सुलझाकर सरदार 15 दिसंबर को विमान द्वारा नागपुर पहुंचे। वहां उन्होंने उसी दिन छत्तीसगढ़ के 38 राजाओं से भेंट कर देश की वर्तमान परिस्थितियों में रियासतों का क्या औचित्य है और उनका किस बात में भला है, यह समझाकर तथा उड़ीसा के राजाओं का उदाहरण देकर उन सभीको राजी कर इन राज्यों का भी मध्यप्रदेश में विलय करा दिया।

सरदार की इस स्तुत्य एवं साहसिक सफलता की बात जब गांधीजी को बताई गई तो आश्चर्य प्रगट करते हुए वे बोले : "सरदार ने तो बड़े सस्ते में यह सौदा निपटा दिया?"

अपने अनुभव के इसी आधार पर सरदार पटेल ने छोटी-बड़ी सभी देशी रियासतों के प्रश्न को हल किया। इन रियासतों का निपटारा उन्होंने तीन बातों का आधार मानकर किया। कुछ को उनके समीवर्ती प्रान्तों में मिला दिया, कुछ को भारत सरकार के अधिकार में लिया और कुछ को आपस में मिलाकर एक संघ का रूप दे दिया। इन तीनों ही दृष्टियों से किया गया रियासतों का यह नवीनीकरण अन्ततः उस विशाल भारतीय राष्ट्र का औचित्य और अधिकार दोनों ही दृष्टियों से जैसे उसके अन्य भाग।

राष्ट्रीय एकता, स्वतन्त्रता और स्वराज्य के सम-संतुलित लाभ एवं उसके प्रति अपने दायित्व की दृष्टि से इन सभी रियासतों का भारतीय संघ के रूप में एकीकरण करने के प्रयत्न में सरदार पटेल को जो कठिनाइयां और संघर्ष करना पड़ा, उन्हें उन्होंने न केवल एक अभिजात योद्धा के जन्म-जात गुणों से पार किया वरन् अपनी सूझ-बूझ, चतुराई, कार्यनिष्ठा, निपुणता एवं कूटनीति के उस गहरे ज्ञान तथा उसे व्यावहारिक स्तर पर उपस्थिति कर आरोपी अथवा आक्रामक को निरस्त्र करने के अपने उद्यमशील उन्नत चरित्रवल के द्वारा ही उसपर विजय पाई। जूनागढ़ और उसके वाद हैदरावाद की जटिल समस्या को सुलझाने में सरदार पटेल के इस चरित्र वल ने काम किया। उन्हें अपने इस लक्ष्य

में न केवल व्यावहारिक बल्कि अनेकों वैधानिक कठिनाइयों के रास्ते से भी गुजरना पड़ा। एक ओर जबकि जूनागढ़ के नवाब की सहानुभूति अपने राज्य की बहुसंख्यक प्रजा के विचारों के विपरीत पाकिस्तान के साथ थी, इतना ही नहीं उसने पाकिस्तान को जूनागढ़-विलय का आश्वासन भी दे दिया, दूसरी ओर हैदराबाद के शासक अपने कठपुतली निजाम की आड़ में उसे एक स्वतन्त्र देश का रूप देना चाहते थे और अपनी इस मुराद की पूर्ति के लिए उन्होंने कूटनीतिक स्तर पर राष्ट्रसंघ में फरियाद कर तथा युद्ध स्तर पर फौजी साज-समान संग्रह कर यत्न-प्रयत्न भी किया, किन्तु जूनागढ़ और हैदराबाद दोनो को ही जिस साहसिक चातुर्य के साथ सरदार पटेल के साथ फतह किया, वह उनके विलक्षण व्यक्तित्व का एक सर्वोत्तम उज्ज्वल पक्ष है।

इस प्रकार काश्मीर को छोड़, जिसपर उन्होंने प० जवाहरलाल नेहरू की असहमति और अस्वीकृति के कारण हाथ नही डाला था, देश में स्थित उन सभी 562 देशी रियासतों को जो ब्रिटिश भारत में अंग्रेजी राज्य की सुदृढ चौकियां थी, तोडकर स्वराज्य और स्वाधीनता की और अंग्रेजी स्थायी और सुदृढ नींव रख दी।

स्वाधीनता के पूर्व भारत का जो चित्र था, स्पष्ट है, स्वाधीनता के बाद वह नही था। यह स्वाधीनता का एक गुण उसका सहज धर्म था जो उनके प्रसाद रूप मे हमें मिला। किन्तु इसके साथ राजनैतिक परिवर्तन कैसे आकस्मिक और अनर्थकारी सिद्ध होते हैं, इसका भी एक प्रमाण हमे भारतीय स्वाधीनता के प्रसव-काल में ही मिल चुका था। राजनैतिक दृष्टि से ही भारत को जो एकता अंग्रेजी राज्य ने प्रदान की वह उनके जाते ही पाकिस्तान के रूप मे, दो राष्ट्रों के रूप में बुरी तरह भग हुई और बदली हुई राजनैतिक परिस्थितियों मे इन दिनो देशी रियासतो की जो गतिविधियां और निहित स्वार्थी तत्त्वो द्वारा तोड-फोड का जो दौर चल रहा था, उसे देखते हुए उस समय अथवा उसके कुछ समय बाद सही, पाकिस्तान बन जाने के बाद शेष भारत की क्या दशा या दुर्दशा होनी थी, यह आज कल्पना कर सकना शायद सम्भव न हो, पर उसका वक्त तो एक ऐसी बदतर स्थिति की भूमिका बनने जा रही थी जिसमे आजाद

होने पर भी समूचे वैर, विरोध, विग्रह और गृह-कलह से ग्रसित खण्ड-खण्ड होकर पराधीनता के पापों का न जाने कितने काल तक प्रायश्चित करना पड़ता और इस स्थिति में स्वाधीनता का क्या अर्थ था, उसमें स्थायित्व होता, उसकी क्या सार्थकता थी, यह समझना कठिन नहीं।

राजनैतिक परिवर्तनों के प्रभाव से पूर्णतया परिचित, अनुभवी और सिद्धहस्त राजनीतिज्ञ सरदार पटेल ने स्वाधीनता को उसके स्थायित्व, सुदृढ़ एवं निर्माणकारी अर्थों में स्वीकार किया था। उसके सम-सन्तुलित सुखोपभोग और उसे सर्व-सुलभ बनाने के लिए ही उन्होंने संघर्ष किया था और उसकी प्राप्ति के बाद देशी रियासतों की इस समस्या के सन्दर्भ में भी यही उनका इष्ट, अभीष्ट दृष्टिकोण रहा।

जैसाकि पं० जवाहरलाल नेहरू ने सरदार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए कहा था :

"वे इच्छा और उद्देश्य में दृढ़ हैं, एक महान संगठनकर्ता हैं, भारत की स्वाधीनता के उद्देश्य में लगन के साथ लगे रहे हैं, और उन्होंने आवश्यक शक्तिशाली प्रतिरोध की सृष्टि की है। कुछ लोग उन्हें पसन्द नहीं कर सके, क्योंकि वे उनसे सहमत नहीं हो सके। परन्तु अधिकांश देशवासियों ने उन्हें अपनी रुचि का नेता पाया है और उनके साथ अथवा मातहत काम करके हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की स्थायी नींव डाली है। उनके लिए, जिन्हें उनके साथ काम करने का सौभाग्य मिला है, वे शक्ति-स्तम्भ की भांति रहे हैं।...यह एक बहुत बड़ी कहानी है जिसे हम सब जानते हैं। इसे इतिहास के अनेक पृष्ठों में लिखा जाएगा, जहां उन्हें नवीन भारत का निर्माता तथा एकीकरणकर्ता बतलाकर उनके विषय में अन्य भी अनेक बातें लिखी जाएंगी।"

पठार के किसी ऐसे विस्तृत क्षेत्र को, जिसमें पत्थर और चट्टानें हों, ऊबड़-खाबड़ भूमि हो, इतना ही नहीं जिसमें विषमता रूपी गहरे खाई-खन्दक हों, यदि कोई किसान अपने श्रम से समतल कर एक उर्वरा खेत बना दे, उसके कुछ समय बाद उसका ही कोई दूसरा साथी, सहयोगी अथवा सहकर्मी उसे जोते-बोए और उस पर फसल उगाए तथा उसके

बाद कोई तीसरा उस उगी हुई खड़ी और लहलाती हुई फसल पर अपने स्वामित्व की घोषणा कर मालिक बनने का दावा करे तो व्यवस्था नियम और नैतिकता की दृष्टि से तीसरा इस हरे-भरे खेत का मालिक भले ही माना जाने लगे पर उसका निर्माता कौन है, यह जानने और मानने में किसीको कोई कठिनाई नहीं होगी।

प्रकृति का यह नियम, पौधा कोई लगाता है, फल कोई खाता है, एक परम्परा नहीं उसका प्रसाद गुण है, एक पुण्य है। सरदार पटेल ने राष्ट्र-निर्माण की दिशा में भारतीय स्वातन्त्र्य-संग्राम के दिनों में तथा उसके बाद राष्ट्र की नव-रचना का स्वाधीनता को जो स्थायित्व, सुदृढ़ता और अवरोध-रहित गतिशीलता प्रदान की है, उसके लिए भारतीय राष्ट्र की यह अखण्ड आत्मा उनके प्रति चिर-ऋणी और उनके राष्ट्र-निर्माता रूप के प्रति सदा अपनी श्रद्धापूर्ण भावांजलि अर्पित करती रहेगी।

व्यक्तित्व

बाह्य आकृति ही व्यक्तित्व शब्द का सही और पूरा-पूरा आकलन नहीं करती अपितु उसे अभिव्यक्ति और ओज प्रदान करने के लिए कुछ आन्तरिक गुणों की भी आवश्यकता होती है। सच तो यह है कि इसके अभाव में व्यक्तित्व का निर्माण सम्भव नहीं। स्पष्ट है जीवित व्यक्ति का ही व्यक्तित्व होता है, मृतक का नहीं। किन्तु अनेक बार देखने में आता है कि जीवित व्यक्तियों में भी व्यक्तित्व का अभाव है। इस प्रकार व्यक्तित्व जीवित व्यक्ति का एक अंग होने पर व्यक्ति की मात्र जीवितावस्था ही उसका पर्याप्त कारण नहीं है अपितु कारण है, उसका जीवन जो उसके परिचय, उसकी पात्रता, और प्रमुखता और प्रधानता का कारण बनता है। संक्षेप में यही व्यक्तित्व-रचना की प्रक्रिया है और यही है उसकी परिभाषा।

जीवन का अर्थ है, यह अविराम निरन्तर उद्देश्यपूर्ण गतिशीलता। ऐसी गतिशीलता जो अवरोधों पर रुके नहीं, चट्टानों पर झुके नहीं और तूफानों में मुड़े नहीं। यदि वह जड़ में आ जाए तो उसका भी

व्यक्तित्व बन जाता है। और इसीलिए जब गंगा का एक व्यक्तित्व बनता है जो चेतन को भी प्रेरणा और प्रोत्साहन देता है।

सरदार वल्लभ भाई पटेल का व्यक्तित्व एक ऐसे ही जीवित व्यक्ति का व्यक्तित्व था जिसने जीवन-भर गंगा की तरह संघर्ष किया, अपने उद्देश्य-प्राप्ति के लिए उस जड़ गंगा की भांति जिसके अन्तराल में, उसकी पावन जलधारा में, उसके प्रवाह और नाद में करुणा-प्रेरित कोमल जल-कल्याण की भावना भरी हुई रहती है, पर उसका रूप-स्वरूप और वेग-बहाव एक नितान्त निर्मम और निष्ठुर गन्तव्यशील पथिक के रूप में बढ़ता दिखाई देता है। अपनी इस अविरामता और गन्तव्यगामिता के कारण ही वह गंगा बनी। गंगा अपने गन्तव्य की इस दूरी को जल्दी से जल्दी पार करने के लिए व्यग्र थी, उसका गन्तव्य ही उसकी बेचैनी थी। बीच की तमाम बातें उसके लिए अवरोध थीं, और इन अवरोधों के आते ही वह उफन पड़ती थी, उसकी आत्मा, उसके प्राण विद्रोही हो भड़क उठते थे।

उद्देश्य की इस पवित्रता से परिपूरित सरदार पटेल का व्यक्तित्व भारत के करोड़ों कृपक और मजदूरों को गंगा की वह धारा बना जिसने अपने प्रवाहशील जीवन से न केवल उन्हें सुख, सन्तोप और परितोप दिया अपितु बन्धनमुक्ति का आत्म-संतोप भी प्रदान किया।

वल्लभ भाई कृपक थे। उनमें कृपक की जन्मजात सहनशक्ति, उसकी परिश्रमशीलता, सच्चाई और स्वाभिमान सभी गुण मौजूद थे। वे कृपक थे इसीलिए कांग्रेस के सिपाही बने और वे एक सच्चे सिपाही थे इसीलिए उसके सेनापति बने। वे साहस के अप्रतिम अवतार थे तो अनुशासन उनका आचरण था। इन्हीं मायनों में वे सरदार थे। अपने उद्देश्य के प्रति निष्ठा, लगन और उसे मूर्त्तरूप देने की तत्परता उनके व्यक्ति का एक उज्ज्वल पक्ष था, तो उसकी पवित्रता और प्रतिष्ठा को प्राणपण से अक्षुण्ण बनाए रखना इनके बहुमुखी व्यक्तित्व का दूसरा पक्ष। उन्होंने जो सोचा, जो ठीक समझा, अपना जो उद्देश्य बनाया, उसे पूरा किया। वे ज़रा भी जल्दबाज नहीं थे, उनमें संयम था, वे रुकना जानते थे और रुककर, समय और साधनों की प्रतीक्षा कर एक बार

जब कदम आगे बढा देते, तो बढ़े हुए कदमों को पीछे मोड़ना तो दूर रहा, उन्हे रोकना नही जानते थे। अपने उद्देश्य-मार्ग के अवरोधो को हटाने मे वे एक ऐसे अभिजात आक्रमणकारी थे जिसके हृदय में लेश-मात्र भी दयाभाव नही रहता। फिर अपने निर्णीत मत के संबंध में तर्क-वितर्क, शंका और संदेह को उन्होने कभी कोई स्थान नही दिया। इतना ही नही जनसाधारण के हितभाव से प्रेरित सकल्पो की पूर्ति के लिए न कभी किसीसे कोई सहयोग और सहायता मागी और न ही किसीका कोई अधिकार या हस्तक्षेप स्वीकार किया। उनके आचरण को किसीने सहारा अथवा नापसन्द किया इसकी भी जीवन मे उन्होने कभी कोई परवाह नही की। उनके इन्ही विचारो एवं आचारण के कारण गांधी-युग मे उनके अनेक सहकर्मियो और के सहधर्मियों मध्य मे वे अकेले एकाकी उस अद्वितीय व्यक्तित्व के धनी वन गए थे, जिसकी समता और शालीनता की तुलना उस काल में ही नही, आज भी और सदा के लिए मौर्य-सम्राज्य के सस्थापक चाणक्य से ही की जा सकती है अन्तर केवल इतना है कि चाणक्य ने एक साम्राज्य की स्थापना की, तो सरदार ने एक साम्राज्यवादी और सामन्ती शासन-प्रथा को समाप्त कर लोकशाही की।

खुरदुरा वेमुलायम और करीब-करीब खूंख्वार बाह्य आवरण उसपर आदमी को देखते ही भाप जाने वाली तेजस्वी आखें, बहुत कम वोलने की आदत, ज़रा मुस्कराकर मिलनेवालो का स्वागत करने की प्रवृति, गम्भीर और दृढतासूचक मुख-मुद्रा, अपनी श्रेष्ठता के मान के साथ दुनिया को देखनेवाली तीखी नज़र जब भी वोले तो दृढ आत्मविश्वास के प्रभाव से भरी हुई वाणी देखने मे निर्मम, कठोर और सामने वाले मनुष्य को अपनी इज्जत करने के लिए वाध्य करनेवाला सरदार पटेल का वाह्य व्यक्तित्व था। स्वाभाविक ही उनका यह बाह्य व्यक्तित्व भयप्रद था जो उनसे मिलनेवाले लोगो को एक झिझक, आशंका, और भय से भर देता था। व्यक्तित्व के इसी पक्ष के कारण यश और प्रसिद्धि के चरमोत्कर्ष को छूने पर भी वे लोकप्रियता के उस चरम विन्दु को नही पहुंच सके, जहां नेहरू जी पहुंचे। उनके तो नाम और स्मरण-यात्रा से लोगो के दिलों मे एक भय-मिश्रित अनुशासन और नियन्त्रण के भाव जागरित हो उठते थे।

किन्तु व्यक्तित्व के इस एक पक्ष के साथ वे अपने आभ्यन्तर में कितने कोमल भाव छिपाए हुए थे, इसका पता बहुत कम लोगों को था। सन् 1932 में जब वे यरवदा जेल में गांधीजी के साथ कैद थे, उस समय के सरदार के सम्बन्ध में अपने अनुभव का उल्लेख करते हुए गांधीजी ने लिखा था : "मुझको उनके अद्वितीय शौर्य का पता था, पर मैं कभी उनके साथ नहीं रहा था, जिसका सौभाग्य मुझे इन 16 महीनों में प्राप्त हुआ। जिस स्नेह से उन्होंने मुझे प्लावित कर दिया, उससे मुझको अपनी स्नेहमयी माता का स्मरण हो आता है। मुझे यह नहीं मालूम था कि उनमें इतने मातृतुल्य गुण हैं।" इसीके साथ सरदार पटेल के व्यक्तित्व का एक और पक्ष था, जिसने कर्त्तव्य के कठोर पथ पर उन्हें तो नीरसता से बचाया ही, उनके सहयोगियों, साथियों और सहकर्मियों को भी सदा स्फूर्ति और ताजगी प्रदान की। यह था, उनका हंसोड़ स्वभाव, बेलाग हाज़िरजवाबी और अपने प्रतिद्वन्द्वी अथवा विरोधी के मन का प्रतिरोध करने की तीव्र, तीखी और तात्कालिक परिणामसूचक शक्ति।

यह सर्वमान्य है कि गांधीजी ने कांग्रेस में जान डाली, उसे खड़ा किया और जनता तक पहुंचाया, जवाहरलाल नेहरू ने उसके दृष्टिकोण और कल्पना को मूर्त्तरूप दिया, राजेन्द्र बाबू ने उसे पवित्रता प्रदान की, तो वल्लभ भाई पटेल ने उसे योग्यता, पूर्णता का आभास और शक्ति प्रदान की। यह सही है कि उनमें न तो महात्मा गांधी की भांति भविष्यदर्शी दृष्टि रही, न जवाहरलाल जी का दार्शनिक प्रवाह और सुभाष की सी सीमाहीन साहसिकता, पर उनका जो शक्ति-बिन्दु संघटनात्मक नियन्त्रण रहा, उसीने उन्हें और उनके व्यक्तित्व को इतना बड़ा और व्यापक बना दिया।

जीवन दर्शन

किसी महत् 'पर-हितभाव' से प्रेरित दृष्टि अथवा दृष्टिकोण की व्यावहारिक परिणति अथवा उसे मूर्त्तरूप देना ही यथार्थ में जीवन दर्शन है। जहां जीवन है वहां उसका दर्शन भी होगा। मूर्ति अथवा किसी

आकृति के रूप-स्वरूप का दर्शन मात्र दृष्टि दर्शन हो सकता है किन्तु वह जीवन दर्शन नहीं बन सकता। जीवन दर्शन तो जीवित व्यक्ति के कृत-कृतित्व का ही परिणाम हो सकता है। मूर्तियों और आकृतियों के दर्शन में तथा जीवन दर्शन में बहुत अन्तर है जिसे हम एक पारदर्शी शीशे और दूसरे एक तरफ पारे से पुते हुए शीशे के अर्थ में ले सकते हैं। पारदर्शी शीशे से केवल हम आर-पार ही देख सकते हैं, अपने से पृथक् जो भी भौतिक है, वह हमें इससे दिखाई देगा, जो हमारे नेत्रों से भी दिखाई देता है, अतः हमारे नेत्र भी पारदर्शी शीशे का काम करते हैं किन्तु दूसरे, एक तरफ पारे से पुते हुए शीशे से हम उसके आर-पार नहीं देख सकते, उलटे हमें जब अपने-आपको ही देखना हो तो इसका उपयोग करना होगा। स्वयं के निरीक्षण-परीक्षण में हमें यह सहायता देता है, अपने-आपको ही देखने की दृष्टि प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में यह आन्तरिक खोज का साधन है। इस प्रकार एक भौतिक दृष्टि का माध्यम है, तो दूसरा आध्यात्मिक दृष्टि का। बहुत अर्थों मे जीवन दर्शन का यही काम है, वह दृष्टि को दिव्यता प्रदान करता है, हमारी आन्तरिक भूख क्या है, उसे खोजने, बुझाने अथवा उसका समाधान करने का दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है।

भारतीय संस्कृति में आनुवशिकता का महत्त्व सर्वविदित है, जैसा-कि पुस्तक के आरम्भ में उल्लेख किया गया है कि सरदार वल्लभ भाई के पिता श्री झवेर भाई, जो बड़े साहसी, सयमी और वीर पुरुष थे, ने सन् 1857 के भारतीय स्वातन्त्र्य-सग्राम के प्रथम प्रयास मे भाग लिया था। वे घरवालो को कोई सूचना दिए बिना पैदल चलकर झासी पहुंचे और वीर रानी लक्ष्मीबाई की सेना मे भर्ती होकर अंग्रेजों के साथ युद्ध किया था। उस समय उनकी अवस्था बीस वर्ष की थी। उन्हे मल्हार राव होल्कर ने इन्दौर में कैद कर लिया और बाद मे मुक्त होने पर तीन वर्ष बाद घर लौटे। देशभक्ति के भावों से भरे मातृभूमि की मुक्ति के इस प्रथम प्रयास में ही झवेर भाई अपने योगदान एव आवश्यकता हो तो बलिदान के लिए भी जब घर से निकले तो उन्हें क्या मालूम था कि उनके ही अंगीभूत श्री विट्ठल भाई और श्री वल्लभ भाई मातृभूमि

की मुक्ति के भावी प्रयासों में उसके स्वातंत्र्य-यज्ञ में अपनी-अपनी आहुतियां देकर उनके उस संकल्प को, जिसे लेकर वे घर से बेघर हुए थे, मूर्त्तरूप देंगे। झवेर भाई एक सिपाही के रूप में रानी लक्ष्मीबाई की सेना में भर्ती हुए। वल्लभ भाई ने भी गांधीजी के नेतृत्व में स्वाधीनता की सारी लड़ाई एक सैनिक के गुणों से ही लड़ी। वे सेनापति भी बने, पर सैनिक कर्त्तव्य-कर्म को उन्होंने एक क्षण को भी नहीं छोड़ा। फिर यह एक और विधि-संयोग की बात देखिए कि जिन झवेर भाई को एक ब्रिटिश राजभक्त रियासती शासन ने कैद कर उन्हें उनके कर्त्तव्य-भाव से वंचित किया, और ऐसे भीषण रक्तपातपूर्ण राष्ट्र-संकट के दिनों में जब झांसी की वीर रानी और स्वातन्त्र्य-प्रेमी वीर सिपाही अंग्रेजों से भयानक और निर्णायक युद्ध कर रहे थे, शतरंज-प्रेमी मल्हारराव होल्कर ने उन्हें अपने मनोरंजन का साधन बनाया, उसी अंग्रेजभक्त रियासती सियासत और उसके शासन को समूल बिना किसी संघर्ष-विशेष और खून-खराबे के शतरंज की उसी चाल से जिसकी योग्यता के कारण ही मल्हारराव होल्कर झवेर भाई पर मुग्ध हुए थे और उन्हें मुक्त किया था, उनके ही बेटे सरदार वल्लभ भाई पटेल ने सदा-सदा के लिए समाप्त कर दिया, उसी सद्भाव से जिस सद्भाव से उनके पिता झवेर भाई को उन्होंने कैद से मुक्त किया था।

सरदार पटेल का सारा जीवन अपनी आनुवंशिक शौर्य की एक गाथा बन गया है। अपने पैतृक गुणों को, उन संस्कारों को, जो संतान को अपने मां-बाप के रक्त-कणों से मिलते हैं, उन्होंने सदा अक्षय रखा। इतना ही नहीं, उन्हें आचरण में उतार ओज प्रदान किया, उन्हें कर्मठता और गतिशीलता प्रदान की। सीधे शब्दों में वे भारतीय किसान के, उसके सर्वोत्कृष्ट कृतित्व और व्यक्तित्व के एक ऐसे गतिमान प्रतीक थे जिसमें भारत की मूल आत्मा विश्वास करती है। वे किसान थे और इसीलिए किसानों का दुःख-दारिद्रय, उनकी दीन-हीन अवस्था और पीड़ा के जन्मना ज्ञाता थे। किसानों का दीन और दुखी रहना ही वे भारत के दुख-दैन्य और दुर्भाग्य का कारण मानते थे। किसान देश की आत्मा है, और उसका दुखी रहना एक आत्मावान् किसान को कैसे

बर्दाश्त होगा। स्वाभाविक ही सरदार पटेल ने भारतीय किसान की इस शोषित, पीड़ित आत्मा की मुक्ति को अपना जीवन दर्शन बनाया। गांधीजी के संपर्क में आने के पूर्व भी अपने वकालत काल में वल्लभ भाई के जो विचार और उनका कृतित्व है, उसे देखने से ज्ञात होता है उनका लक्ष्य, उनका जीवन दर्शन किसान ही था, जो बापू के संपर्क में आने के बाद विकास पाकर व्यापक बन गया। इस संबंध में बारडोली सत्याग्रह के समय अपनी आतंरिक इच्छा को व्यक्त करते हुए उन्होंने बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा भी था :

"किसान डरकर दु:ख उठाए और ज़ालिमों की लातें खाए, इससे मुझे शर्म आती है। मेरे दिल में आता है कि किसान को कंगाल न रहने देकर खड़ा कर दूं और स्वाभिमान से सिर ऊंचा करके चलनेवाला बना दूं। इतना करके मरूं, तो अपना जीवन सफल समझूं।"

जैसाकि ऊपर कहा गया है, दर्शन का अर्थ मात्र देखना या दर्शन शब्द न होकर उसे अपनी आन्तरिक अनुभूतियों के साथ व्यावहारिक बनाना, आचरण का रूप देना ही हो सकता है। सरदार वल्लभ भाई पटेल का जीवन दर्शन भारत का दीन-हीन और दुर्बल किसान था। उसे जाग्रत्, उन्नत, स्वावलम्बी और स्वाभिमानी बनाना उनका लक्ष्य था; जो मात्र देश की राजनैतिक स्वाधीनता से पूरा नहीं हो सकता था। अतः उन्होंने अपने मूल लक्ष्य की प्राप्ति के लिए जीवन-भर उसके साधन रूप स्वाधीनता के लिए तो संघर्ष किया ही, उसके प्राप्त होते ही, शोषण और विषमता की व्याधियों रूपी उन समस्त देशी रियासतों का भारतीय संघ में विलीनीकरण भी कर दिया। जिसके बिना किसानों की और उनकी आत्मा की और इस देश की वास्तविक मुक्ति और सुख-समृद्धि सम्भव ही नहीं थी। सरदार पटेल के जीवन की और उनके जीवन दर्शन की सफलता और सार्थकता का इससे बड़ा और अच्छा प्रमाण क्या हो सकता है कि वे अपने इस मूल उद्देश्य की प्राप्ति तक ही जिए और उसके प्राप्त होते ही चले गए।

सिंहावलोकन

भारतीय स्वातन्त्र्य-आन्दोलन के दिनों से गांधी दर्शन और गांधीजी के चरित्र का सूक्ष्म और साकार अनुसरण करनेवालों में जिन महत् व्यक्तियों को गिना जा रहा है, प्रधानतया उनमें आचार्य विनोवा भावे और डॉक्टर राजेन्द्रप्रसादजी ही दो ऐसे व्यक्तियों के नाम हमारे सामने आते हैं जिन्होंने गांधी दर्शन और उसके आचरण पक्ष पर बड़ी निष्ठा और नैतिकता से आजीवन काम किया है। गांधीजी द्वारा सत्य और अहिंसा के प्रयोग-काल में ही अंधविश्वास से नहीं, अपितु अनुभव और आत्म-परीक्षण से जिन लोगों ने मनसा-वाचा-कर्मणा श्रद्धापूर्ण हृदय से अपने आपको अर्पित कर रखा था, उन अगणित लोगों के बीच नेतृत्व और नेताओं के रूप में अधिकांशतः इन्हीं दोनों महानुभावों को गिना जाता है। विचार और आचार की दृष्टि से वस्तुतः बात भी यही है। गांधी दर्शन और उनके जीवन की प्रवृत्तियों को एक वार अंगीकार कर लेने के वाद आज भी आचार्य विनोवा भावे गांधीजी के एकमात्र अनन्य और अन्यतम अनुयायी और उत्तराधिकारी हैं। इसी प्रकार डाक्टर राजेन्द्रप्रसादजी ने भी जीवनपर्यन्त राजनीति और सत्ता की कलुषितता के बीच गांधी दर्शन और उसकी मूल प्रवृत्तियों को निवाहा अथवा जीवित रखा। इतना ही नहीं, अपने आचरण से एक क्षण को भी नजरन्दाज नहीं होने दिया। उन्होंने गुरुतर और गरिमामय राष्ट्रपति पद पर तथा वैभवपूर्ण राष्ट्रपति भवन में रहकर भी उसकी हिफाजत और रक्षा की। इतनाही नहीं उसकी अक्षुण्णता को नये आयाम भी दिए। इतिहास में ये दोनों ही महानुभाव गांधीजी और उनके दर्शन के दो योग्य और उच्चतम अनुयायी और अधिकारी गिने जाएंगे, इसमें सन्देह नहीं। किन्तु, सरदार पटेल का चित्रण और कृतित्व जैसा है, उसे गांधी दर्शन और उसकी मूल प्रवृत्तियों की कसौटी पर कसने से जो निष्कर्ष दिखाई देता है, उससे ज्ञात होता है कि वल्लभ भाई का गांधी दर्शन की पृष्ठभूमि में क्या योग है, इस सन्दर्भ में अभी हमारा ध्यान गया ही नहीं; मूल्यांकन तो दूर की बात है।

गांधीजी के चतुर्दिक् व्यक्तित्व का विश्लेषण करने पर हमें उनके

अगणित अनुयायियों में चार ऐसे प्रकाश-पुंज दिखाई देते हैं, जिन्होंने अपने जीवन द्वारा गांधीजी की मूल प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व किया है। इनमें गांधीजी की आध्यात्मिक धारा का आचार्य विनोबा भावे ने, उनके आचरण की पवित्रता का डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद ने, उनकी राजनैतिक सूझ-बूझ और दूर-दर्शिता का जवाहरलाल नेहरू ने तथा उनके दृढ़, कर्मठ और व्यावहारिक विचारों का सरदार पटेल ने। यदि हम ध्यान से देखें तो हमारे उक्त नेताओं के जीवन और उनके कृतित्व में बापू के जीवन की प्रधानतया वही प्रवृत्तियां दृष्टिगोचर होती हैं जिनका हमने ऊपर जिक्र किया है किन्तु इसके विपरीत सरदार पटेल में एक सीमा तक गांधीजी के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की परछाईं हमें देखने को मिल जाती है। वे वास्तविक अर्थों में अध्यात्मवादी थे, उनमें गांधीजी के आचरण की पवित्रता मूर्तिमान थी तथा राजनैतिक सूझ-बूझ और दूरदर्शिता में किसीसे पीछे नहीं थे। यह उनके समूचे जीवन पर दृष्टिपात करने से भली भांति प्रमाणित हो जाता है। फिर इन तीनों ही प्रवृत्तियों के पालन और पोषण के लिए जिस दक्षता, दृढ़ता और व्यावहारिक कर्मठता की आवश्यकता होती है, वह उनमें कूट-कूटकर भरी थी। इतना ही नहीं, उनके जीवन में और अनुप्राणित हो उठी थीं। वे मात्र-मनन-चिन्तन, अध्ययन-अध्यापन अथवा अनुसरण अनुवर्ती न होकर एक जीवित दर्शन थे। जीवन के आचरण पक्ष की वे ऐसी आग थे जिनके सहारे और ताप से दूसरों को हिम्मत और ताकत मिलती थी। उनके जीवन के इस पक्ष के सम्बन्ध में विचार व्यक्त करते हुए जवाहरलाल-जी ने कहा है : "वे एक ऐसी शक्ति के स्रोत थे, जो कांपते दिलों को साहस प्रदान करते थे।"

सरदार पटेल को इस विशाल भारतीय राष्ट्र के एकीकरणकर्ता के रूप में आधुनिक भारत का बिस्मार्क नाम दिया जाता है। सचमुच ही उनके इस कार्य के कारण उनकी तुलना जर्मनी के बिस्मार्क से की जा सकती है। किन्तु, कई दृष्टियों से वे बिस्मार्क से भी आगे हैं। बिस्मार्क की कार्य-पद्धति, उसकी सफलता के साधन और सरदार पटेल की कार्य-पद्धति और सफलता के साधन भिन्न थे। दो भिन्न पथों से ये दोनों ही

पथिक, एक हिंसा के मार्ग पर दूसरा अहिंसा के मार्ग पर, चलकर एक ही लक्ष्य पर पहुंचे। जर्मनी में जिस हिंसा और खून-खराबी के बाद बिस्मार्क को अपने उद्देश्य में सफलता मिली, उसकी तुलना में सरदार पटेल की सफलता उनकी अहिंसा की एक आध्यात्मिक विजय है। आधुनिक इतिहास में सरदार पटेल के नेतृत्व में यह एक ऐसी घटना घटी जिसका दूसरा उदाहरण मिलना सम्भव नहीं है।

आधुनिक भारत के कर्णधारों में सरदार वल्लभ भाई पटेल और पं० जवाहरलाल नेहरू दोनों ही महानुभावों का राष्ट्रीय एकता और उसके निर्माता-रूप में सर्वाग्रणी योगदान है। एक ने राष्ट्रीय प्रगति की, तो दूसरे ने उसे गति प्रदान की। दूसरे शब्दों में एक ने राष्ट्र-रूपी इमारत की नींव भरी, तो दूसरे ने उसे खड़ा किया। पं० जवाहरलाल नेहरू ने स्वयं भी सरदार पटेल को 'राष्ट्रीय एकता के शिल्पी' नाम दिया है। इन दोनों ही नेताओं का स्वाधीनता के बाद से ही अधिकार और उत्तरदायित्व दोनों ही दृष्टियों से स्थान और योगदान रहा, उसे जनता ने भी अपने अधिकार की ही दृष्टि से देखा है और उसे उपलब्धियों की कसौटी पर कसा है। सरदार पटेल को स्वाधीनता के बाद लगभग साढ़े तीन वर्ष का जो थोड़ा-सा समय मिला उसमें उन्होंने अपनी आकांक्षाओं और अपने दायित्व को बड़ी खूबी से मूर्त्तरूप दे दिया। उनका जीवन सफलता की एक ऐसी कहानी है जिसमें हाथ में लिए हुए काम में असफलता का कोई स्थान नहीं है। इतना ही नहीं, नेहरू जी की उनके काल की और उसके बाद की सफलताओं में भी उनकी छाप है, उनका योगदान अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यद्यपि यह सही है और जैसाकि उस काल में कहा भी जाता रहा है, विचारों एवं दृष्टिकोणों दोनों में पर्याप्त असमानता थी दोनों ही राष्ट्र-रूपी रथ की धुरी के दो विभिन्न छोर थे। किन्तु देशभक्ति, राष्ट्र-सेवा आदर्शों के प्रति आस्था और नेतृत्व के प्रति अपनी निष्ठा के कारण दोनों ने ही अपने विचारों के इस अन्तर और असमानता को कायम रखते हुए कभी आपस में टकराने की कोशिश नहीं की। इतना ही नहीं, वे अपने जीवन के सर्वोपरि लक्ष्य राष्ट्रीय स्वाधीनता को अक्षुण्णता

प्रदान करने के उद्देश्य भाव से प्रेरित राष्ट्र-रथ के उन पहियों की भांति, जो विचार और संयम रूपी कील के नियंत्रण में प्रगति-पथ पर दौड़ते हैं, समस्याओं से संघर्ष करते रहे। सरदार पटेल के जीवन-काल में उनके और प० नेहरू के विचारों के इस अन्तर को बढ़ा-चढ़ाकर और तोड़-मरोड़कर उन दिनों जिस प्रकार पेश किया जाता और उससे जिस प्रकार अटकलों और राजनैतिक चालबाजियों से लोगों को गुमराह करने के जो निम्न-स्तरीय प्रयत्न भी आरम्भ हुए थे उनसे कुछ ऐसा आभास होता था कि इन दोनों ही नेताओं में संघर्ष अवश्यम्भावी है। किन्तु स्थिति की इस विकृतावस्था से दोनों ही परिचित और सजग थे और यही वजह हुई कि समय-समय पर प्रायः दोनों ही नेताओं ने इस सम्बन्ध में जनता को आगाह करते हुए इन कुत्सित प्रचारों का शिकार न बनने की सलाह भी दी। इस सम्बन्ध में सरदार पटेल ने 3 अक्टूबर, 1948 को नई दिल्ली के एक आयोजन में बड़े ही मार्मिक शब्दों में कहा :

"मैं हिन्दुस्तान में रहनेवाले सब लोगों को, खास तौर से कहना चाहता हूं कि आप यह न समझिए कि यह गवर्नमेंट तो कैपिटलिस्ट की है, हालांकि बार-बार आप लोगों को ऐसी बातें कही जाती हैं। लेबर में काम करनेवाले हमारे कई दोस्त, जो हमारे साथ मिलते नहीं हैं, अपने अलग ख्यालात रखते हैं। आज हमारे जो लीडर (हमारे प्रधानमन्त्री) हैं, वही ट्रेड यूनियन कांग्रेस के पहले प्रेसीडेण्ट थे, उन्होंने उसकी बुनियाद डाली थी। उनसे बढ़कर मजदूर का हित चाहनेवाला कोई और मैंने नहीं देखा है। अब जब यह बात लोगों के ख्याल में आती है, तब कहा जाता है कि उनका (प्रधानमन्त्री का) तो कुछ चलता नहीं, वहां तो गवर्नमेंट में दो पार्टियां है। छोटे दिल के और पागल लोग ऐसी-ऐसी बातें करते हैं। ये समझते हैं कि हम ऐसे बेवकूफ हैं कि मुल्क की आजादी के लिए जिन्दगीभर साथ रहने के बाद अब हम आपस में इस प्रकार की लड़ाई कर लेंगे और अपनी दो पार्टियां बनाएंगे। यदि मैं अपने लीडर का साथ न दे सकूं और उनका पैर मैं मजबूत न कर सकूं तो मैं एक मिनट भी गवर्नमेंट में न रहूंगा। यह मेरा काम नहीं है। इस तरह की बेवफाई करना मेरे चरित्र में नहीं है। क्योंकि अपने जिन

लीडर (महात्मा गांधी) के पास से मुल्क की सेवा का धर्म मैंने सीख लिया है, उसमें इस प्रकार की वेवफाई आ जाए, तो मुझे अपघात (आत्महत्या) कर लेना चाहिए। लेकिन वार-वार छोटे दिल के आदमी ऐसी वातें करते हैं और भोले-भाले आदमी उनकी बात मान भी लेते हैं। हां, कभी-कभी तो किसी वात के वारे में हम दोनों अपनी अलग राय भी रखते हैं। हर एक वात के वारे में हम एक-दूसरे के साथ मशविरा करते हैं, नहीं तो ज्वाइन्ट रिस्पौंसिविलिटी कैसे चले? ऐसा न हो तो यहां जो पुराना राज चलता था, जिसे आराक्रेसी (निरंकुशता) राज कहते हैं, वैसा ही चले। तो ये सव गलत ख्याल हैं।"

सरदार पटेल के उक्त कथन से न केवल उनके और पं० नेहरू के वीच प्रचार किए जानेवाले मतभेद का खण्डन हो जाता है, वरन् नेतृत्व के प्रति उनकी आस्था का जो चित्र उनके इन शब्दों से वनता है, अनुसरण की इससे अधिक सुन्दर और सार्थक व्याख्या क्या हो सकती है।

यथार्थ गांधी-युग की विभूतियों में सरदार पटेल और पं० नेहरू ये दो ऐसी विभूतियां देश को मिलीं जिन्होंने भारत की एकता, उसकी समृद्धि, मान-प्रतिष्ठा के लिए एक-दूसरे का वेजोड़ पूरक वनकर काम किया। सरदार पटेल ने घर संभाला तो नेहरूजी ने घर से वेघर रह पूर्ण निश्चिन्तता से अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में देश की प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा की स्थापना की जो एक नव स्वतन्त्र राष्ट्र के लिए नितान्त अनिवार्य थी। सरदार पटेल का ही एक और कथन जिसमें राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय एकता, मजवूती और प्रतिष्ठा का क्या महत्त्व है, उसकी क्या उपयोगिता है, और उस दृष्टि से दोनों ने ही सम-सहयोग से जो काम किया, वह इस कसौटी पर कितना खरा उतरता है, यहां उद्धृत करना उपयुक्त होगा। वे 31 अक्टूबर, 1949 को नई दिल्ली के अपने सम्मान में आयोजित एक समारोह में आभार प्रगट करते हुए वोले :

"मैं ईश्वर से दिन-रात प्रार्थना करूंगा कि जो भाव आपके दिलों में भरे हैं, प्रेम का और जो शुभाशीष आप मुझे दे रहे हैं, उसके लिए मैं जव तक जिन्दा रहूं, दिन पर दिन अधिक लायक होता रहूं। लेकिन

हमारा नेता, हिन्दुस्तान का नेता, तो आज परदेश मे है[1]। मेरा काम तो मर्यादित है कि उनके हाथ-पैर मजबूत करना, जब तक मुझसे हो सके। अब वह अपनी शक्ति से बाहर हमारी इज्जत बढा रहा है और दुनिया मे हमारी जो इज्जत बढ़ी है, वह सबसे ज्यादा तो गांधीजी ने बढाई है। उनके जीवन से बढ़ी, उनकी मृत्यु से और ज्यादा बढ़ी। दूसरा हमारा आज का नेता जिस स्नेह से और जिस भाव से बाहर अपना काम कर रह रहा है, उससे भी हमारी इज्जत बढी है। लेकिन आखिर यदि हमे अपने मुल्क की सच्ची इज्जत बढानी है और उसकी रक्षा करनी है, तो हमें अपना घर सबसे पहले संभालना पडेगा। जिसका घर ठीक नही है, उसकी बाहर कितनी भी इज्जत हो, वह ज्यादा दिन नही चलेगा।"

इस प्रकार सरदार वल्लभ भाई पटेल क्या थे, कैसे थे और उन्होने क्या किया, यदि हमे यह देखना है तो सिंहावलोकन की आवश्यकता नही, वह तो उनका अतीत होगा। उनका सच्चा रूप तो आज का भारत है। भारत की एकता में, उसकी अखण्डता में तथा उसे स्थायित्व देने-वाले हर प्रयत्न में सरदार पटेल सदा जीवित हैं, जीवित रहेंगे और उनका वह विशाल व्यक्तित्व एव उनके जीवन्त कृतित्व अतीत की स्मृतियां न रहकर देश के नवयुवकों में नव-स्फूर्ति, नव-चेतना एव नव-प्राणों के रूप में सदा अनुप्राणित रहेगा। भारत, भारत के इस बिस्मार्क का, उसके इस लौह पुरुष का और इससे भी अधिक अपने स्वाभिमानी और देशभक्त कृषक सरदार पटेल का चिर ऋणी रह अनन्त काल तक उसका अनुगामी बना रहेगा।

महाप्रयाण

किसी भी वस्तु का मूल्य हाथ मे रहने पर नही उसके खो जाने पर ही आंका जा सकता है। इसी प्रकार किसी भी व्यक्ति का उसके साथ

1. प्रधानमन्त्री जवाहरलाल नेहरू उन दिनो सयुक्त राष्ट्र अमेरिका में प्रेसीडेंट ट्रूमैन के निमन्त्रण पर गए हुए थे।

रहने पर नहीं अपितु चले जाने पर और इतनी दूर चले जाने पर, जहां से लौटना सम्भव न हो, ज्ञात होता है। हाथ में रहनेवाली वस्तु का जो मूल्य आंका जाता है वह बाज़ार भाव है और साथ में रहनेवाले व्यक्ति की जो उपयोगिता और अनिवार्यता अनुभव की जाती है, वह व्यवहार भाव है। अतः स्पष्ट है किसी भी वस्तु अथवा व्यक्ति के गुण, धर्म, कार्य, व्यवहार भाव, मूल्य, उपयोगिता और योगदान के सही-सही मूल्यांकन के लिए दृष्टि की जिस निस्पृहता और निरपेक्षता की आवश्यकता होती है, वह वस्तु अथवा व्यक्ति की उपस्थिति में नहीं अपितु अनुपस्थिति में, उसके भाव में नहीं अभाव में ही सम्भव है।

सरदार वल्लभ भाई पटेल 7 अक्टूबर, सन्' 50 में जब अन्तिम बार हैदराबाद गए, तो वहां उन्हें हैदराबाद-सिकन्दराबाद की म्युनिसिपैलिटी और हिन्दी-प्रचार सभा की ओर से जो मानपत्र दिया गया उसके प्रति आभार प्रगट करते हुए उन्होंने कहा था : "मुझे मानपत्र देने की कोई आवश्यकता नहीं है और न इसका अभी कोई समय ही आया है। जब आदमी दुनिया छोड़कर चला जाता है, असल मानपत्र तो उसके बाद मिलता है, क्योंकि कोई आदमी आखिर दिन तक कोई गलती न करे, तब उसकी इज्ज़त रहती है। लेकिन यदि आखिरी उम्र में दिमाग पलट जाए तो सारी करी कराई ही खत्म हो जाती है। इसलिए हमें ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए कि आखिर दम तक हम शुद्ध और निःस्वार्थ भाव से जनता की सेवा करते रहें, ऐसी ताकत हमको मिले।"

अपने उक्त मन्तव्य के दो माह बाद ही 12 दिसम्बर को वे वायु-परिवर्तन के लिए बम्बई गए और वहां 15 दिसम्बर को अल्प अस्वस्थता के बाद प्रातःकाल नौ बजकर सैंतीस मिनट पर दिवंगत हो गए। क्षणमात्र में देहावसान का समाचार सारे देश में विद्युत्-सा फैल गया। इसी दिन सायंकाल सात बजकर चालीस मिनट पर भारत के राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद, प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू, अनेक प्रांतों के राज्य-पालों, मुख्यमन्त्रियों तथा मन्त्रियों की उपस्थिति में उनके एकमात्र पुत्र श्री डाह्या भाई पटेल ने उनके शव को अग्नि-समर्पित किया और कुछ ही देर में धू-धू करती हुई अग्नि की प्रचण्ड ज्वालाओं ने उसे भस्मीभूत

कर दिया। 15 दिसम्बर को ही सारे देश की प्रतिनिधि संस्था भारतीय संसद ने उनके सम्बन्ध में एक मार्मिक शोक-प्रस्ताव पास कर उन्हें भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित की। देश-भर में उनके लिए शोक मनाया गया। श्रद्धांजलियां अर्पित की गईं। इतनी ही उनकी मृत्यु की कहानी बनी। कवि नीरज ने क्या ठीक ही कहा है:

"न जन्म कुछ न मृत्यु कुछ, बस इतनी सिर्फ बात है,
किसी की आंख खुल गई, किसी को नींद आ गई।"

प्रिय अथवा आत्मीय की मृत्यु पर जो शोक, संताप और वेदना लोगों को होती है वह उनके जाने से हुई, पर जैसाकि गो० तुलसीदासजी ने कहा है:

"प्रमान यही तुलसी जो फरा सो झरा,
जो बरा सो बुताना।"

के अनुसार जो आता है, उसे जाना ही है, अतः जैसाकि कवि नीरज ने कहा है जन्म और मृत्यु एक घटना-मात्र है, महत्त्व तो जीवन का है, उस जीवन का जो प्रेमचन्दजी के शब्दों में: "व्यक्ति की सबसे बड़ी अभिलाषा यह होती है कि उसका जीवन एक कहानी बन जाए।" इस दृष्टि से ही सरदार पटेल का समूचा जीवन भारतीय जनता और जाग्रत् भारत की एक ऐसी कहानी बन गया है जिससे उसका अतीत तो गौरवान्वित हुआ ही, उसका आज और अनागत भी गौरव की गरिमा से सदा भरा रहेगा। भारत की भावी संतान सरदार के जीवन से सदा प्रेरणा और प्रोत्साहन ग्रहण करेगी, इतना ही नहीं उसको उनकी जो देन है उसे विस्मृत करना कठिन ही नहीं असम्भव होगा। जैसाकि उन्होंने अपने निधन के कुछ समय पूर्व हैदराबाद में दिए गए मानपत्र के उत्तर में कहा था: "जब आदमी दुनिया छोड़कर चला जाता है, असल मानपत्र तो उसके बाद मिलता है"—उनके इन शब्दों के सन्दर्भ में अब हम अनुभव कर रहे हैं कि आज सरदार पटेल के मान और गुमान से भरा हुआ भारत जितना उनके प्रति कृतज्ञ है, उतना कदाचित् लोगों के प्रति होगा, यही उनके जीवन की कहानी है, उसकी उपलब्धि है, उनका गर्व है और गर्व है जो व्यक्ति-स्तर से उठा और राष्ट्र बन गया। वास्त-

में देश की एकता, उसकी अखंडता का जो वर्तमान मानचित्र है, वही उनके जीवन का ज्वलन्त मानपत्र है, और, इन्हीं अर्थों में उनके जीवन का वह मानपत्र जो उन्हें उनके जीवन-काल में हैदराबाद में दिया गया था, उनकी मृत्यु के वाद वदलकर सारे राष्ट्र का मानपत्र (मानचित्र) बन गया है। अन्तर केवल इतना है कि वह मान और सम्मान जो उस दिन उन्हें हैदराबाद की जनता ने दिया था, उसके अनुरूप वने रहने और उसकी रक्षा के लिए कृत-संकल्प सरदार मौजूद थे और अव वह सारा मान-सम्मान वे भारतीय जनता को ही सौंपकर उसकी मान-मर्यादा और प्रतिष्ठा-रक्षा का भार भी हमें सौंप गए हैं।

परिशिष्ट

जीवन की विशिष्ट घटनाएं

1875 : 31 अक्टूबर जन्म।
1893 · झबेर बा के साथ विवाह।
1897 . नडियाद से हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण की।
1900 · मुखतारी आरम्भ।
1903 : अप्रैल में पुत्री मणिबेन का जन्म।
1905 : 28 नवम्बर को पुत्र डाह्या भाई का जन्म।
1909 : 11 जनवरी को पत्नी का बम्बई में स्वर्गवास।
1910 · बैरिस्टरी की पढाई के लिए इग्लैण्ड को प्रस्थान।
1913 : 13 फरवरी को बैरिस्टरी पास कर वापस बम्बई पहुंचे।
1916 : गांधीजी के साथ प्रथम सपर्क।
1917 . खेडा सत्याग्रह में प्रमुख भाग।
1920 : 11 जुलाई को गुजरात विद्यापीठ की स्थापना का निश्चय।
1921 : गुजरात प्रान्तीय काग्रेस कमेटी के प्रथम अध्यक्ष चुने गए।
इसी वर्ष सदा के लिए बैरिस्टरी छोडी।
दिसम्बर मे अहमदाबाद काग्रेस के स्वागताध्यक्ष चुने गए।
1923 : 9 सितम्बर को नागपुर के झडा सत्याग्रह में विजय प्राप्त की।
दिसम्बर मे बोरसद सत्याग्रह मे विजय प्राप्त की।
1924 : अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी के चेयरमैन चुने गए।
1927 अहमदाबाद म्युनिसिपैलिटी के दुबारा चैयरमैन चुने गए।
गुजरात बाढ-सकट का निवारण कार्य।
1928 : 29 फरवरी से बारडोली में करबन्दी सत्याग्रह आरम्भ किया।
अक्टूबर मे बारडोली सत्याग्रह मे पूर्ण सफलता प्राप्त की।
दिसम्बर में कलकत्ता काग्रेस मे अभूतपूर्व सम्मान प्राप्त।

1930 : 7 मार्च को नमक सत्याग्रह के समय रास गांव में गिरफ्तार। और पौने चार मास की कैद ।

26 मार्च को कांग्रेस के स्थानापन्न अध्यक्ष वने ।

1 अगस्त को वम्वई में पुनः गिरफ्तारी और तीन मास की सजा। दिसम्वर में पुन : गिरफ्तारी और नौ मास की सजा ।

1931 : 25 जनवरी को जेल से मुक्त ।

मार्च में कराची में कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षता की।

1932 : 4 जनवरी को महात्मा गांधी सहित गिरफ्तार और पूना की यरवदाजे ल में नज़रवन्द ।

1934 : 14 जनवरी को वीमारी के कारण जेल से मुक्त ।

पटना में कांग्रेस पार्लियामेण्टरी वोर्ड के अध्यक्ष वन गए ।

1935 : 23 मार्च को वोरसद में प्लेग निवारण कार्य आरम्भ किया।

1936 : 8 अप्रैल को कमला नेहरू अस्पताल फण्ड के लिए दान देने की अपील की ।

2 जुलाई को पुनर्गठित कांग्रेस पार्लियामेण्टरी वोर्ड के अध्यक्ष चुने गए तथा कांग्रेस चुनाव-संघर्ष का संचालन किया ।

1938 : हरिपुरा कांग्रेस के स्वागताध्यक्ष ।

1940 : 18 नवम्वर को अहमदावाद में व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा आंदोलन में गिरफ्तार ।

1941 : 20 अगस्त को वीमारी के कारण रिहाई ।

1942 : प्रयाग में कांग्रेस कार्य-समिति की वैठक में अप्रैल में प्रथम वार 'अंग्रेज चले जाओ' प्रस्ताव उपस्थित किया ।

9 अगस्त को अन्य नेताओं सहित गिरफ्तार और अहमद नगर जेल में नज़रवन्द ।

1945 : 15 जून को जेल से रिहाई तथा वाइसराय द्वारा वुलाई गई शिमला कांफ्रेन्स में भाग ।

1946 : 23 फरवरी को भारतीय जल-सेना के विद्रोह को शान्त किया। वाइसराय लार्ड वावेल के अनुरोध पर भारतव्यापी डाक हड़ताल को तोड़ा

2 सितम्बर को भारत की अन्तर्कालीन सरकार में गृह-सदस्य बने 9 सितम्बर को भारतीन सविधान परिपद् मे प्रथम वार भाग लिया।

1947 : 4 अप्रैल को वल्लभ विद्यानगर में विट्ठल भाई महाविद्यालय का उद्घाटन किया।

5 जुलाई को सरदार की अध्यक्षता मे देशी राज्यों की समस्या को सुलझाने के लिए रियासती विभाग की स्थापना की गई।

15 अगस्त को सरदार नवीन भारतीय उपनिवेश के उप-प्रधानमन्त्री तथा गृहमन्त्री बने।

9 नवम्बर को सरदार की आज्ञा से जूनागढ़ पर अधिकार किया गया।

14 नवम्बर को सरदार ने विहार के नीलगिरी राज्य पर अधिकार करने की आज्ञा दी।

1948 : 13 सितम्बर को सरदार की आज्ञा से हैदरावाद पर चढाई कर उसपर 17 सितम्बर को अधिकार किया गया।

31 अक्टूबर को उनेक 74 वें जन्म-दिवस पर उनको वम्बई में स्वर्णमय रत्नजटित अशोक स्तम्भ तथा 800 तोले चांदी की गांधीजी की मूर्ति भेंट की गई।

3 नवम्बर को सरदार को नागपुर विश्वविद्यालय ने विधि के डाक्टर (डाक्टर ऑफ लाज) की उपाधि से सम्मानित किया।

25 नवम्बर को उन्हे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने विधि के डाक्टर (डाक्टर ऑफ लाज) की सम्मानित उपाधि प्रदान की।

26 नवम्बर को उन्हे इलाहाबाद मे प० गोविन्दवल्लभ पन्त के हाथो 'पटेल अभिनन्दन ग्रन्थ' भेट किया गया।

27 नवम्बर को प्रयाग विश्वविद्यालय ने उनको विधि के डाक्टर (डाक्टर आफ लाज) की सम्मानित उहाधि प्रदान की।

1949 : फरवरी को सरदार जब अपनी दक्षिण भारत की यात्रा मे हैदरावाद आए तो उनका स्वागत करने के लिए निज़ाम हवाई अड्डे पर स्वयं आया। उसने अपने जीवन मे प्रथम और अंतिम

बार हाथ जोड़कर सरदार का अभिवादन किया।

26 फरवरी को उस्मानिया विश्वविद्यालय ने सरदार को विधि के डाक्टर (डाक्टर आफ लॉज़) की सम्मानित उपाधि दी। नेहरूजी के अमरीका, कनाडा तथा इंग्लैण्ड की यात्रा पर जाने पर सरदार पटेल 7 अक्टूबर से 15 नवम्बर, 1949 तक भारत के स्थानापन्न प्रधानमन्त्री रहे।

1950 : 28 अप्रैल को अहमदाबाद आने पर उन्हें 15 लाख रुपये की थैली भेंट की गई। 19 मई को कुमारी अन्तरीप जाकर वहां कन्याकुमारी के मन्दिर में पूजन किया।

12 दिसम्बर वायु-परिवर्तन के लिए बम्बई गए।

15 दिसम्बर को प्रातः काल 9-37 बजे महाप्रयाण।